अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 22, 1-15 जुलाई 2020

भारत- चीन सीमा विवाद

एलएसी, एलओसी की तुलना में पांच गुना बड़ी सीमारेखा है। लगभग 3488 किलोमीटर लंबी यह सीमारेखा भारत और चीन के बीच हमारे चार प्रदेशों और एक केंद्रशासित प्रदेश लद्दाख से होकर गुजरती है। भारत और चीन की अपनी अपनी लाइन ऑफ ऐक्चुअल कंट्रोल है। दोनो के बीच चार से दस किलोमीटर की असमान पट्टी है। दोनो सेनाएं इस पट्टी में आधी आधी दूर तक गश्त लगाती है, पर हथियारों का इस्तेमाल नहीं करतीं। ताजा विवाद लद्दाख स्थित गलवान घाटी पर कब्जे का है। यहां हुए संघर्ष में एक कर्नल सहित हमारे 20 जवानों को शहादत देनी पड़ी। विभिन्न स्रोतों से मिलने वाली सूचनाओं के मुताबिक चीनी सेना को भी नुकसान उठाना पड़ा।

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 43, अंक : 22, 01-15 जुलाई 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर कुसुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अरविन्द अंजुम**
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. ग्रामोद्योगों की जड़ों तक जाने का समय... 3
3. अमेरीका में अश्वेत आंदोलन का... 4
4. एलएसी की निगरानी कैसे करता है भारत... 5
5. सर्व सेवा संघ की प्रेस विज्ञप्ति... 6
6. चीन आखिर चाहता क्या है? भारत के... 7
7. एशिया के दो कद्दावर मुल्कों में तनाव... 9
8. कबीर का घर... 11
9. नेपाल के भारत विरोध की वजह सीमा... 13
10. लौटकर शायद न वो पिछला जमाना... 15
11. राष्ट्रीय संपदा के केन्द्रीकरण की कोशिश... 17
12. इरफान का गांधी... 19
13. कविताएं... 20

संपादकीय

चीन के साथ विवाद

गलवान घाटी में भारतीय सैनिकों की शहादत, भारत-चीन के बीच सुरक्षा तंत्र के ध्वस्त हो जाने का एक दुखद उदाहरण है। जो क्षेत्र कभी भी विवाद में नहीं था, वहां विवाद की स्थिति का निर्माण सैन्य-कूटनीति में कमजोरी को उजागर करता है। भारत को दृढ़तापूर्वक यह संदेश देना होगा कि 1 अप्रैल 2020 की स्थिति पर चीन को वापस जाना होगा। किसका दावा कहां तक है, उसे धारणा में भिन्नता (Differeneces in Perception) की ओट में, सैन्य कार्यवाई का आधार नहीं बनने दिया जा सकता है। भारत और चीन के बीच सीमा विवाद है, किन्तु इस विवाद के बीच सैन्य कार्यवाई न हो, यह भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे में चीन को यह संदेश देना जरूरी है कि दोनों देशों की सेनाएं एलएसी का सम्मान करें। निषिद्ध क्षेत्र पर कोई कब्जा न कर सके। जिस क्षेत्र में दोनों सेनाएं गश्त लगाती हैं, वह सिकुड़ने न पाये और वहां झड़पें न हों, इसके लिए नये मेकैनिज्म एवं प्रोटोकॉल को विकसित करना होगा। युद्ध के क्षेत्र का विकास दोनों देशों के लिए दूरगामी दृष्टि से नुकसानदेह साबित होगा।

21वीं सदी, एशिया की सदी है। दोनों देश सैन्य शक्ति बढ़ायेंगे ही। लेकिन एक सत्ता संतुलन (Balance of Power) भी स्थापित करना होगा। चीन को स्पष्ट समझना होगा कि भारत से श्रेष्ठ होने की नीति या अवधारणा उसके लिए भी नुकसानदेह साबित होगी तथा एक मजबूत भारत, चीन के लिए भी आश्वस्त रहने का कारण बनेगा। पूंजीवादी पैमाने के दायरे में, वर्तमान सुपर पावर व उनके सहयोगी नहीं चाहेंगे कि एशिया में ये दो देश अगले 25 वर्षों में विश्व के सुपर पावर के रूप में उभरें। इसलिए जरूरी है कि चीन और भारत दोनों, विश्व को अमेरिका की दृष्टि से देखना बंद कर दें। उदाहरण के लिए इण्डो-पैसिफिक (या एशिया पैसिफिक) समुद्र में चीन अपना वर्चस्व बढ़ाने की नीति को त्याग कर, इस महासागर के तट पर बसे सभी राष्ट्रों का समुद्र सीमा पर आनुपातिक अधिकार स्वीकार करे और नियंत्रण मुक्त क्षेत्र का दायरा बढ़ाने में मदद करे, तो एशिया के देश अमेरिका पर अपनी निर्भरता को कम कर सकेंगे। अगर चीन विस्तारवादी नीति अपनाता है, तो उसे प्रति-संतुलित करने के लिए अन्य देश अमेरिका की प्रमुख भूमिका को स्वीकार करने लगते हैं। एशिया के देश, बिना अमेरिका की दखल के, आपस में मिलजुल के रह सकते हैं, ऐसा वातावरण बनेगा, तभी 21वीं सदी एशिया की सदी बन सकेगी।

एक अन्य मुद्दा बेल्ट एण्ड रोड इनिशिएटिव (Belt and Road Initiative) का है। इसके अंतर्गत चीन विश्व भर में व्यापारिक मार्ग का निर्माण कर रहा है और इस मार्ग से जुड़ने वाले देशों की विकास नीति में भी सहयोग (हस्तक्षेप) कर रहा है। चीन केन्द्रित यह व्यापार-मार्ग नेटवर्क, अमेरिका के व्यापारिक वर्चस्व को कमजोर करने का कारण बन सकता है। भारत इसमें शामिल नहीं हुआ, यह ठीक ही है। किन्तु भारत को भी एक वैश्विक व्यापार मार्ग का नेटवर्क स्वतंत्र रूप से विकसित करना होगा। ईरान में हम जो बंदरगाह बना रहे थे, उससे किसी भी हालत में पीछे हटना ठीक नहीं होगा। भारत को समुद्र मार्ग के नेटवर्क को बढ़ाने पर ज्यादा जोर देना चाहिए तथा अधिक से अधिक देशों में सहभागीदारी पर आधारित बंदरगाह बनाने की दिशा में बढ़ना चाहिए। यह काम अमेरिका के दखल से मुक्त होना चाहिए।

आज पुनः एक दौर आ गया है, जिसमें भारत नये सिरे से गुटनिरपेक्ष आंदोलन को खड़ा करने की पहल कर सकता है। बदली हुई परिस्थिति में रूस, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील जैसे देश इसमें शामिल हो सकते हैं। यह गुट छोटे देशों को भी व्यापारिक एवं सैन्य सुरक्षा प्रदान करने का माध्यम बन सकता है। यह आंदोलन किसी के भी वर्चस्व को नकारने का फोरम बन सकेगा।

हम एक नयी विश्व व्यवस्था के उदय के कगार पर हैं। यदि गुटनिरपेक्ष आंदोलन, सैन्य शक्ति व शोषण शक्ति के विकल्प में उदात्त मूल्यों के आधार पर नयी विश्व व्यवस्था बनाने की पहल करेगा तो यह विश्व बैंक तथा डब्ल्यूटीओ जैसे संगठनों का भी विकल्प प्रस्तुत कर सकेगा। आज बहुत कुछ दांव पर लगा है। चीन को समझना होगा कि युद्धोन्माद अंततः उसके स्वयं के विनाश का भी कारण बन सकता है। अतः उसको भी अपने देश के अंदर और पड़ोस में शांति एवं सहअस्तित्व की नीति को एक मौका देने की जरूरत है। **–बिमल कुमार**

सत्तर साल पहले

ग्रामोद्योगों की जड़ों तक जाने का समय

❑ श्रीकृष्णदास जाजू

देश के भाग्य-विधाताओं से

गत अप्रैल मास में सब राज्यों (प्रांतों) के मुख्यमंत्रियों और प्रांतीय मंत्रियों कमेटियों के अध्यक्षों का दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें भारत में आर्थिक आयोजन क्या हो और तुरंत कौन-सा आर्थिक कार्यक्रम हाथ में लिया जाय, इसका विचार करके कुछ निर्णय लिये गये। देश की आर्थिक व्यवस्था में इसे बड़ा महत्त्व का कदम समझना चाहिए। सम्मेलन में ग्रामोद्योगों के बारे में भी विचार किया गया और उनको प्रोत्साहन देने का निश्चय हुआ, पर सवाल यह है कि इस विषय में देश के भाग्य-विधाता क्या जड़ तक जाने को तैयार हैं?

ग्रामोद्योग के पक्ष में यंत्रोद्योग का नियंत्रण

एक प्रस्ताव में कहा गया है कि, ''योग्य रीति से जुड़ायी गयी (Co-ordinated) योजना में बड़े पैमाने के यंत्र-उद्योग और छोटे पैमाने के गृह-उद्योग, दोनों एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं।'' यह एक सर्व साधरण विधान है। एकाध व्यावहारिक उदाहरण देकर तफसील बताये बिना केवल इतना लिख देने मात्र से संतोष नहीं हो सकता। अब तक ऐसा जोड़ना और पूरक होना व्यवहार में साबित नहीं किया गया है। अनुभव तो कुछ उलटा ही आ रहा है। यह विधान सही माना जाय, तो भी ग्रामोद्योग की दृष्टि से यह अधूरा दीखता है। यहां 'यंत्रोद्योग' और 'ग्रामोद्योग', शब्दों का मतलब यह है कि ''एक ही प्रकार की चीज बनाने का यंत्रोद्योग और ग्रामोद्योग'' होना चाहिए। अगर उन्हें जुड़ाने का और पूरक करने का प्रयत्न करने पर भी पाया जाय कि वैसा नहीं बन आता है, 'यंत्रोद्योग' ग्रामोद्योग का भक्षक ही बना रहता है, तो फिर हमारे राज्यकर्ता उस यंत्रोद्योग को मुक्तहस्त से चलने देंगे या उसका ग्रामोद्योग के पक्ष में नियंत्रण करेंगे? इस जड़ तक गये बिना केवल ग्रामोद्योगों के लिए शुभेच्छा प्रकट करते रहने से क्या हो सकता है? यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हर हालत में कुछ ग्रामोद्योगों को चलाना ही है। अगर यंत्रोद्योगों की उनसे टक्कर होती है तो यंत्रोद्योगों का इतना नियंत्रण हो जाना चाहिए, जिससे उन ग्रामोद्योगों के पनपने में कोई बाधा न आये।

स्पर्द्धा में ग्रामोद्योग नाम-शेष हो रहे हैं

कुछ गृह उद्योग, जैसे कि हाथी-दांत का काम आदि, जिनमें कला की प्रधानता रहती है, ऐसे हैं, जिनका यंत्रोद्योग से संबंध नहीं आता। वे चलने चाहिए और चलते रहेंगे। पर वे चीजें चंद श्रीमान् लोगों के ही काम की होंगी व बहुत कम लोगों को ही काम दे सकेंगी। देश के सामने समस्या करोड़ों लोगों को काम देने की है, जो व्यापक पैमाने पर चलने वाले और व्यापक उपयोग की चीजें बनाने वाले ग्रामोद्योगों से ही हल हो सकती है। यहां ऐसे कुछ ग्रामोद्योगों का नाम निर्देश कर देना अच्छा होगा। कपड़े के बारे में लिखने की जरूरत नहीं। यह विषय बहुत समय से हमारे सामने है और उसका अनेक पहलुओं से विचार भी हो चुका है। देहाती तेलघानी और मृत ढोरों को उधेड़ने से लेकर चमड़ा बनाना, चमड़े की सब प्रकार की चीजें बनाना; मृत पशुओं के सब अवशेषों का उपयोग करना—ये ऐसे उद्योग हैं, जो बड़ी संख्या में लोगों को काम दे सकते हैं और देहात-देहात में चलाये जा सकते हैं। कपड़े में भी ऊनी वस्त्र का काम विशेष ध्यान देने लायक है। ये गिनाये गये उद्योग ऐसे हैं, जो व्यापक पैमाने पर चलाये जा सकते हैं। आज तो वे यंत्रोद्योग की स्पर्द्धा में धीरे-धीरे नाम-शेष हो रहे हैं। सम्मेलन के प्रस्ताव में जिन ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने की बात लिखी है, उनमें ये भी गिनाये गये हैं।

राज्यकर्ताओं को स्पष्ट करना चाहिए

कोई चीज हाथ से बनाने में यंत्र की अपेक्षा अधिक समय लगता है, इसलिए वह महंगी पड़ती है। उसके लिए निश्चित बाजार हुए बिना वह उद्योग टिक नहीं सकता। प्रस्ताव में लिखा है कि ''यंत्रोद्योग की चीजों पर कुछ टैक्स बिठाकर उस रकम से ग्रामोद्योग को मदद देनी चाहिए।'' पर ऐसी मदद कब तक चलेगी? मदद देने पर भी क्या वह ग्रामोद्योग सदा के लिए यंत्रोद्योग से मुकाबला कर सकेगा? मदद मिलने के समय के बाद फिर उसे क्या धीरे-धीरे क्षीण होना पड़ेगा? कारखाने वाले अपनी चीजें दिनोंदिन अधिकाधिक सस्ती बनाने की कोशिश में रहते हैं, इसलिए केवल दोनों प्रकार के उद्योगों को जोड़ने की और पूरक बनाने की कोशिश से हमारा काम नहीं निभ सकेगा। इसका निश्चय तो करना ही पड़ेगा कि प्रधानता किसकी रहे? राज्यकर्ताओं को यह स्पष्ट करना चाहिए।

निर्णय का समय

अर्थशास्त्री कहते हैं कि ऐसे ही ग्रामोद्योग चलने चाहिए, जो अपने पैरों पर खड़े हो सकें। यंत्रोद्योगों के बारे में भी यही विधान किया जाता है, पर प्रत्यक्ष व्यवहार में कई यंत्रोद्योगों को वर्षों से करोड़ों रुपयों की लागत का संरक्षण दिया जा रहा है। यदि देश के हित में उन्हें चलाना जरूरी है तो ग्रामोद्योगों के संरक्षण का भी पूरा अधिकार क्यों न माना जाय? यंत्रोद्योग की मर्जी पर सदा के लिए ग्रामोद्योग जिन्दा नहीं रह सकते। अगर उनको स्थायी स्थान देना है तो यह निर्णय करना होगा कि उनके मार्ग में जो-जो बाधायें आयेंगी, वे हटायी जायेंगी। इसमें सरकार की नीति स्पष्ट होनी चाहिए। अगर दोनों का मेल बैठ सके तो अच्छी बात है, नहीं तो क्या करेंगे, इसका उल्लेख सम्मेलन के प्रस्ताव में नहीं है। उसे स्पष्ट करने की जरूरत है।

बदतर हालात की संभावना

यह भी सोचना चाहिए कि मेल बैठाने के इस प्रयोग में समय लगाना उचित होगा या नहीं? एक ओर तो ग्रामोद्योग धीरे-धीरे मर रहे हैं, दूसरी ओर उन्हीं चीजों के यंत्र-कारखाने बढ़ रहे हैं और वे उन ग्रामोद्योगों के नाश के कारण हो रहे हैं। शायद जल्दी ही ऐसा समय आ जाय कि हमारी लाख इच्छा होने पर भी बाद में उन ग्रामोद्योगों को हम जिन्दा नहीं रख सकेंगे या फिर से पुनर्जीवित नहीं कर सकेंगे। सरकार की नीति स्पष्ट होकर उसका अमल जल्दी ही शुरू नहीं होगा तो ग्रामोद्योगों की आज जो बुरी हालत है, वह बदतर ही होती जायेगी। ❑

अंतर्राष्ट्रीय

अमेरीका में अश्वेत आंदोलन का भटकाव और महात्मा गांधी

दुनिया में शायद ही कोई ऐसा सुधार हो, जो किसी विरोध या आंदोलन के बिना हुआ हो. अफ्रीकावंशी काले नागरिकों के साथ होने वाले भेदभाव के विरोध में अमेरिका में हो रहे आंदोलन को लेकर जब राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप भन्ना रहे थे, तब पूर्व राष्ट्रपति ओबामा ने एक छात्रसभा में कहा था कि अमरीकी लोकतंत्र भी विरोध आंदोलनों की ही देन है. लेकिन आंदोलनों को जब किसी प्रभावशाली नेता या लक्ष्य से दिशा नहीं मिलती, तब वे दिशाहीन हो जाते हैं और अराजकता में बदल जाते हैं. पिछले दिनों अमरीकी राज्य जॉर्जिया की राजधानी एटलांटा में गिरफ्तारी से भागने की कोशिश कर रहे एक काले युवक रेशार्ड ब्रुक्स की गोरे पुलिस अफ़सर गैरेट रॉल्फ़ की गोलियों से मौत हो गई. गैरेट रॉल्फ़ को बर्खास्त कर दिया गया और वहां के पुलिस प्रमुख ने इस्तीफ़ा दे दिया. रोष में आए प्रदर्शनकारियों ने एक रेस्तराँ को आग लगा दी, जिससे लगता है कि यह आंदोलन भी भटकने लगा है और कुछ अराजक तत्व उसे हाइजैक करने की कोशिश कर रहे हैं.

काले नागरिकों पर पुलिस की बर्बरता को रोकने और कालों के साथ होने वाले भेदभाव को मिटाने के लिए पहले पुलिस विभाग और न्याय व्यवस्था में सुधार की माँग उठी थी. जो प्रदर्शनकारियों पर पुलिस की बर्बरता की घटनाओं की वजह से पुलिस विभागों को भंग करने और सामुदायिक पुलिस के गठन की माँग में बदल गई. ऐसे पुलिस विभाग, जिनका गठन समुदायों की रज़ामंदी से हो और जो समुदायों के जातीय स्वरूप और अनुपात पर आधारित हों. ट्रंप प्रशासन के विरोध के बावजूद मिनियापोलिस समेत कई राज्यों के जिलों में सामुदायिक पुलिस के गठन की प्रक्रिया शुरू भी हुई. इस बीच आंदोलनकारियों की नज़र ऐसी प्रतिमाओं और झंडों पर गई, जिनका इतिहास नस्लवादी था और दास-व्यापार से जुड़ा हुआ था. ट्रंप प्रशासन के विरोध के बावजूद कई राज्यों के जिला प्रशासन इस माँग पर भी विचार करने को तैयार हो गए.

गांधी प्रतिमा पर निशाना

लेकिन इसी बीच आंदोलनकारियों ने ऐसे लोगों की प्रतिमाओं को निशाना बनाना शुरू कर दिया, जो दासता के समर्थक रहे, नस्लवादी विचारधारा के थे और दास-व्यापार से जुड़े थे. इसी जुनून में कुछ लोगों ने अमरीका की राजधानी वॉशिंगटन डीसी स्थित भारतीय दूतावास के सामने लगी महात्मा गाँधी की प्रतिमा पर भी हमला बोल दिया. चेहरे से लेकर पाँवों तक रंग फेंककर प्रतिमा को रंग दिया गया और प्रतिमा की आधारशिला पर नस्लवादी लिख दिया गया. भारत स्थित अमरीकी राजदूत ने घटना पर माफ़ी माँगते हुए घटना की छानबीन का वादा किया, लेकिन गाँधी जी की

गांधी जी जननेता होने के साथ-साथ, मँजे हुए राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, विचारक, पत्रकार और सत्याग्रही सभी कुछ थे. इंसान की बराबरी की बातें करना आसान है, लेनिन, माओ, चर्चिल, नेल्सन मंडेला, मार्टिन लूथर किंग, अंबेडकर और लोहिया में से एक नेता में भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि दूसरे इंसान से अपना मैला साफ़ न कराए. अब इसके बावजूद यदि लोगों को गाँधी जी नस्लवादी नज़र आते हैं तो यह उनकी समझ है.

प्रतिमाओं पर हमले की यह पहली घटना नहीं है. दो साल पहले उनकी प्रतिमा को घाना विश्वविद्यालय के परिसर से हटा दिया गया था. उससे पहले जोहांसबर्ग में अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस के एक समर्थक ने महात्मा गाँधी की प्रतिमा और शिलापट्ट पर सफ़ेद रंग फेंक दिया था. अमरीकी आंदोलन के समर्थन में लंदन में चल रहे प्रदर्शनों के बीच वेस्टमिंस्टर संसद भवन के सामने लगी महात्मा गाँधी की प्रतिमा की आधारशिला के सामने भी किसी ने काले रंग से नस्लवादी लिख दिया.

पिछले कुछ दिनों से इंगलैंड के उत्तरी शहर लेस्टर से महात्मा गाँधी की प्रतिमा के खिलाफ़ हस्ताक्षर अभियान चल रहा है. लंदन में हुए प्रदर्शनों के दौरान अति दक्षिणपंथी प्रदर्शनकारियों का एक गिरोह भी प्रदर्शन करने उतरा था. उनका उद्देश्य चर्चिल और नेल्सन की प्रतिमाओं को आंदोलनकारियों के हमलों से बचाना था. हैरत की बात है कि नस्लवादी विचारधारा वाले चर्चिल और नेल्सन की प्रतिमाओं की रक्षा के लिए तो लोग आगे आए, लेकिन महात्मा गाँधी की प्रतिमा पर नस्लवादी नारा लिखने वालों से बचाने के लिए कोई आगे नहीं आया. आप कह सकते हैं कि जिन्हें चर्चिल, नेल्सन और गाँधी जी के बीच फ़र्क नज़र न आता हो, उनसे ऐसी उम्मीद रखना ही भूल है.

गाँधी जी की प्रतिमाओं पर हमले करने का चलन अफ्रीका, अमरीका और लंदन में ही नहीं, भारत में भी बढ़ा है. लोगों को अब अम्बेडकर और लोहिया गांधी जी से ज्यादा बड़े नेता नज़र आने लगे हैं. अफ्रीका में नेल्सन मंडेला को और अमरीका में मार्टिन लूथर किंग को आदर्श मानने वाले लोगों को गाँधी जी के बयानों में और पत्रों में नस्लवादी विचार नज़र आते हैं. हर नेता की अपनी ख़ूबियाँ हैं और कमियाँ भी. लेकिन एक बात निर्विवाद है. अपनी कथनी और विचारों को जीवन में ढाल कर दिखाने वाला नेता दुनिया में गाँधी जी के सिवा कोई नहीं हुआ है.

गांधी जी जननेता होने के साथ-साथ, मँजे हुए राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, विचारक, पत्रकार और सत्याग्रही सभी कुछ थे. इंसान की बराबरी की बातें करना आसान है, लेनिन, माओ, चर्चिल, नेल्सन मंडेला, मार्टिन लूथर किंग, अंबेडकर और लोहिया में से एक नेता में भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह दूसरे इंसान से अपना मैला साफ़ न कराए. अब इसके बावजूद यदि लोगों को गाँधी जी नस्लवादी नज़र आते हैं तो यह उनकी समझ है.**-शिवकांत, मीडिया स्वराज**

भारत-चीन तनाव

एलएसी की निगरानी कैसे करता है भारत

❑ जुगल पुरोहित

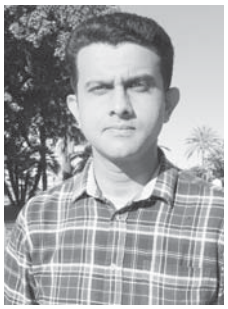

आमतौर पर भारत में लोग एलओसी यानी लाइन ऑफ कंट्रोल के बारे में ज्यादा जानते हैं। एलओसी भारत और पाकिस्तान प्रशासित कश्मीर को दो हिस्सों में बांटने वाली 740 किलोमीटर लंबी सीमा रेखा है. एलओसी पर युद्ध हुए हैं. फिल्में और डॉक्यूमेंट्रीज बनी हैं. इसके अलावा इस सीमा पर नियमित तौर पर गोलीबारी होती रहती है, लिहाज़ा यह हमेशा सुर्खियों में होती है. लेकिन ये बातें एलएसी यानी भारत और चीन को अलग करने वाली लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल के बारे में लागू नहीं होती.

एलएसी, एलओसी की तुलना में पांच गुना बड़ी सीमा रेखा है. 3488 किलोमीटर लंबी यह सीमा रेखा चार राज्यों और केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख से होकर गुजरती है. इसके बावजूद इसके बारे में लोग ज्यादा नहीं जानते हैं. वास्तविकता यह है कि यह कोई सीमा रेखा नहीं है. दरअसल इस इलाके में भारत और चीन की अपनी-अपनी लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल हैं.

ऐसे में इस इलाके में भारत चीन के बीच हुए मौजूदा विवाद ने लोगों को चौंकाया नहीं है. एलएसी पर छोटी मोटी झड़प से लेकर हिंसक झड़प तक कई बार हो चुकी है, यहां तक कि एक युद्ध भी हो चुका है. ऐसे में सवाल यह है कि भारत एलएसी की निगरानी कैसे करता है.

भारत के गृह मंत्रालय ने 2004 से एलएसी की निगरानी की जिम्मेदारी भारत-तिब्बत सीमा सुरक्षाबल (आईटीबीपी) को सौंप रखी है. इससे पहले आईटीबीपी की मदद असम रायफल्स के जवान भी किया करते थे. आईटीबीपी का गठन भारत-चीन युद्ध के दौरान ही 24 अक्टूबर, 1962 को हुआ था.

जयवीर चौधरी आईटीबीपी के डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल (डीआईजी) पद से 2010 में रिटायर हुए हैं. 37 साल की सेवा के दौरान वे उन सभी राज्यों में तैनात रहे हैं, जिनसे होकर एलएसी गुजरती है. एलएसी पर भारत की निगरानी व्यवस्था के बारे में पूछे जाने पर जयवीर चौधरी ने बताया, 'हमने आईटीबीपी के तौर पर एक सुरक्षा बल को खड़ा तो किया है, लेकिन उसकी जरूरतों को ठीक से पूरा नहीं किया गया है. सीमा की निगरानी करने वाले सुरक्षा बल के तौर पर जो हमें मिलता है और जिसकी हमें ज़रूरत है, उसमें काफी अंतर है.' हालांकि हाल के दिनों में एलएसी के इलाके में भारत ने अपने इंफ्रास्ट्रक्चर को मजबूत करने पर ध्यान दिया है.

भारत सरकार के गृह मंत्रालय की 2018-19 की सालाना रिपोर्ट (2019-20 की सालाना रिपोर्ट अभी उपलब्ध नहीं है) के मुताबिक भारत चीन सीमा की निगरानी के लिए आईटीबीपी की 32 बटालियन तैनात हैं. प्रत्येक बटालियन में कम-से-कम एक हज़ार जवान मौजूद होंगे. यानी प्रत्येक बटालियन पर 110 किलोमीटर सीमा की सुरक्षा का जिम्मा है. ये सीमा दुनिया के सबसे जोखिम भरे इलाके से गुजरती है। यह 9000 फीट से लेकर 18750 फीट की ऊंचाई तक दुर्गम पर्वतों और जंगलों का इलाका है. जयवीर चौधरी कहते हैं, 'मुझे मालूम है कि सीमा रेखा पर ज्यादा सुरक्षाबलों को तैनात किया गया है, लेकिन सीमा पर प्रभावी निगरानी रखने के लिए मौजूदा संख्या से तीन गुना ज्यादा जवानों की जरूरत है.'

भारत के गृह मंत्रालय की 2018-19 की रिपोर्ट के मुताबिक 3488 किलोमीटर लंबी सीमा पर 178 बॉर्डर पोस्ट हैं, यानी दो पोस्ट के बीच की दूरी 20 किलोमीटर है. ज़मीनी स्तर पर इसके क्या मायने हैं? जयवीर चौधरी ने कहा, 'पर्वतीय इलाकों में कई बार किसी भी दिशा में 100 मीटर तक देख पाना मुश्किल होता है. उत्तर पूर्व के जंगलों में कई बार दो फीट आगे की चीज भी दिखाई नहीं देती है. दरअसल हमें साइंटफिक और सिस्टमेटिक अप्रोच की जरूरत है और अभी इसकी कमी है.' लेकिन इन मुद्दों के बारे में सरकार और गृह मंत्रालय अनजान कैसे रह सकते हैं? इस बारे में गृह मंत्रालय से कई बार पूछे जाने पर भी हमें अब तक कोई जवाब नहीं मिला है.

जयवीर चौधरी ने बताया, 'सरकार इन कमियों के बारे में जानती है, लेकिन कई बार बजट कम होने को कारण बताया जाता है, इससे बात वहीं समाप्त हो जाती है. कैसे काम होता है, उसका एक उदाहरण देता हूं. मान लीजिए कि आपको 10 वाहनों और उसके ईंधन के लिए फंड मिला. बाद में आपको पांच और वाहनों के लिए फंड दिया जाता है, लेकिन इन गाड़ियों के लिए अतिरिक्त ईंधन खरीदने की अनुमति नहीं मिलती. आप बताइए कि उन पांच वाहनों का आप क्या करेंगे?'

मैंने जयवीर चौधरी को ध्यान दिलाया कि आईटीबीपी का बजट 2009-10 में 1134.05 करोड़ रुपये हुआ करता था, जो 2018-19 में बढ़कर 6190.72 करोड़ रुपये तक पहुंच गया है. इस पर जयवीर चौधरी ने कहा, 'लेकिन इस दौरान सुरक्षा बलों की संख्या भी तो बढ़ी है. मैंने आपको कार और ईंधन का उदाहरण दिया है, आप उस पर सोचिए तो आपको अपने सवाल का जवाब मिल जाएगा. समस्या केवल बजट की नहीं है, बजट का इस्तेमाल कैसे करते हैं, उससे भी जुड़ी हुई है.'

इसके अलावा जयवीर चौधरी एक और पहलू पर ध्यान दिलाते हैं. उन्होंने कहा, 'आईटीबीपी गृह मंत्रालय को रिपोर्ट करती है. हमारे पीछे सेना तैनात होती है, जिसके साथ आईटीबीपी कई बार ज्वाइंट पेट्रोलिंग का काम करती है. सेना रक्षा मंत्रालय को रिपोर्ट करती है. गृह मंत्रालय अपने चार्टर के मुताबिक सीमा की निगरानी, आंतरिक सुरक्षा और अन्य पहलुओं पर काम करता है. ऐसे में सीमा की निगरानी और उसके मुद्दों पर ध्यान देने के लिए अलग से एक मंत्रालय क्यों नहीं होना चाहिए? ऐसा होने पर मुझे भरोसा है कि हमारा नज़रिया कहीं ज्यादा केंद्रित और साइंटिफिक होगा.'

सेना का नज़रिया

पूर्व नॉदर्न आर्मी कमांडर लेफ्टिनेंट

जनरल डीएस हुड्डा (रिटायर्ड) जब जम्मू कश्मीर स्थित ऊधमपुर के अपने मुख्यालय में बैठते थे, तब उन्हें एलओसी और एलएसी, दोनों पर काम करने का मौका मिला था. उनका भी मानना है कि एलएसी पर कहीं ज्यादा निगरानी रखे जाने की ज़रूरत है. वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं, 'मैं ऐसा इसलिए नहीं कह रहा हूं, क्योंकि गलवान घाटी में सीमा पर हिंसक झड़प हुई है.' डीएस हुड्डा हमेशा से तकनीक में निवेश बढ़ाने की बात करते रहे हैं. उन्होंने कहा, 'इस इलाके की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यहां जितने भी सुरक्षा बल के जवान तैनात कर दिए जाएं, वे पर्याप्त नहीं हो सकते.'

ऐसे में मुश्किल क्या है, क्या फंड की कमी है या समस्या को समझने में मुश्किल हो रही है या फिर एलएसी को उतनी प्राथमिकता नहीं मिल रही है, जितनी मिलनी चाहिए? यह पूछे जाने पर लेफ्टिनेंट जनरल हुड्डा ने बताया, 'समस्या को लेकर समझ भी है, स्पष्टता भी है, लेकिन चुनौती यह है कि उस इलाके में आप जो करते हैं, उसे सतत जारी रखने की जरूरत है. इलाका ऐसा है, जहां तकनीक को भी आसानी से स्थापित नहीं किया जा सकता.'

चीन की सेना की ताकत

चीन के सैनिक जहां भी होते हैं, उनके साथ एक राजनीतिक प्रतिनिधि तैनात होता है. सेना को उस प्रतिनिधि के निर्देशों के मुताबिक काम करना होता है. इस नज़रिए से देखें तो उनकी कमजोरी यह है कि वे खुद से कोई फैसला नहीं ले सकते हैं.

उनके पास ऐसा इंफ्रास्ट्रक्चर है कि वे पूरी कमांड को एक जगह से दूसरी जगह महज 12 घंटे के अंदर ट्रेन लाइन के ज़रिए तैनात कर सकते हैं, हमें ऐसा करने के लिए हज़ारों वाहनों की जरूरत होगी. उन्होंने अपने उपकरण विकसित कर लिए हैं, ज़रूरत के मुताबिक इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया है. उनकी सीमा पर ऐसी सड़कें हैं, जहां वे जेट विमान उतार सकते हैं. उनकी ट्रेन और हवाई पट्टी साल भर सेवा में रहती है. हम उनसे अपनी तुलना नहीं कर सकते हैं. हमारा काम इधर बढ़ा है, हम तेजी से काम कर रहे हैं, लेकिन काफी कुछ किए जाने की अभी भी जरूरत है.

आईटीबीपी और भारतीय सेना का जमीनी स्तर पर तालमेल काफी बेहतर है. सुरक्षा बल जितने स्वतंत्र होंगे, उनका तालमेल उतना ही बेहतर होगा. कई स्रोतों से सूचनाएं मिलने पर देश को ही फायदा होता है. हर सुरक्षा बल की अपनी भूमिका है. सेना हो या आईटीबीपी, किसी को भी बड़े भाई जैसा बर्ताव करने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए. **-बीबीसी**

सर्व सेवा संघ की प्रेस विज्ञप्ति

युद्ध और सैनिकों की शहादत

पिछले दिनों भारत चीन सीमा पर उत्पन्न हुए तनाव में दोनों देशों के अनेक सैनिक हताहत हुए हैं। बीच-बीच में समाचार आते रहे हैं कि चीन की सेनाएं भारतीय क्षेत्र में अनेक किलोमीटर तक घुस आयी हैं। जब चीन के राष्ट्रपति जि शीन पिंग भारत की यात्रा पर पधारे थे, तब हमारे प्रधानमंत्री ने उनका शानदार स्वागत किया था। साथ ही उन्हें झूला भी झुलाया था। वे जिस मार्ग से भी गुजरे, उस मार्ग के आसपास के निवासियों को कैद जैसी स्थिति में रखा गया था। जिस दिन वे अहमदाबाद पहुंचे, उसके एक दिन पहले चीन की सेनाएं भारतीय क्षेत्र में 5 किलोमीटर तक घुस आयी थीं, पर हमारी सरकार की ओर से इस पर कोई विरोध या प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिली।

अभी कुछ महीने पहले भारतीय जनता पार्टी के अरुणाचल प्रदेश इकाई के अध्यक्ष के बयान के अनुसार चीनी सेनाएं अरुणाचल में 25 किमी तक घुस आयी थीं। इस पर भी भारत सरकार मौन रही। भारत सरकार के इस मौन का अर्थ कहीं समर्पण तो नहीं है?

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) दुनिया में कहीं भी किसी भी युद्ध का विरोधी है। सरकारों के निर्णयों के अनुसार सेनाओं को युद्ध में झोंक दिया जाता है। मंत्रीगण तो अपने कक्ष में बैठे रहते हैं, पर किसी मां के बेटे, किसी बहन के भाई तथा किसी पत्नी के पति को अपनी जान गंवानी पड़ती है। दुनिया के विभिन्न अस्त्र-शस्त्र निर्माता चाहते ही हैं कि कहीं न कहीं युद्ध होता रहे, ताकि उनके अस्त्र शस्त्रों की खपत होती रहे। वे तो आतंकवादियों तक को हथियार बेचने में गुरेज नहीं करते।

दुनिया ने दो-दो विश्वयुद्धों की विभीषिका को देखा है तथा इसके परिणामों को भुगता है। फिर युद्ध न हो, इसी उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी थी। बावजूद इसके, कहीं न कहीं युद्ध होते ही रहते हैं। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका के बारे में भी पुनर्चिन्तन किया जाना चाहिए।

आजादी की लड़ाई में स्वतंत्रता सेनानी बड़े उत्साह के साथ गाते थे—

तन हो स्वदेशी, मन हो स्वदेशी,
मर जायें अगर तो, कफन हो स्वदेशी।

स्वदेशी हमारी आजादी की लड़ाई का एक महत्त्वपूर्ण मूल्य रहा है। पर बाद के दिनों में इसे मद्धिम कर दिया गया और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए दरवाजे खोल दिये गये। इतना ही नहीं, कोर सेक्टर में भी इन्हें प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी गयी। जिन चीजों का उत्पादन हम खुद करते थे, उन्हें भी विदेशी कंपनियों से खरीदा जाने लगा। उदाहरण के लिए भारत सरकार की एक कंपनी उच्च क्षमता वाले रेल इंजनों का निर्माण करती है, बावजूद इसके, विदेशों से रेल इंजन मंगाये जाते हैं।

चीन पर तो हम इतने निर्भर हो गये हैं कि हमें पतंग से लेकर गणपति की मूर्ति तक चीन से मंगानी पड़ती है। हद तो तब हो गयी, जब सरदार पटेल की प्रतिमा का निर्माण भी चीन की किसी कंपनी से करवाया गया।

पहले हम गौरव के साथ अपने उत्पादों पर मेड इन इंडिया लिखते थे। एनडीए सरकार ने उसे किनारे छोड़कर, मेक इन इंडिया शुरू किया। इसका मतलब है कि सरकार ने यह मान लिया है कि बिना विदेशी कंपनियों के हमारा उद्धार नहीं होने वाला है। हमें गुलामी की इस मानसिकता से निजात पानी ही होगी।

सर्व सेवा संघ सीमा पर शहीद हुए सैनिकों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है तथा उनके परिवार जनों के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट करता है।

हम दोनों सरकारों से अपील करते हैं कि वे विवाद के सभी मसलों को आपसी बातचीत से सुलझायें। युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं है। युद्ध में जान की हानि ही नहीं होती, बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था भी बरबाद हो जाती है।

शुक्र है कि इस संघर्ष में हथियारों का इस्तेमाल नहीं किया गया। अच्छा होता, दुनिया की सारी सेनाएं हथियारों को तिलांजलि दे देतीं। **-महादेव विद्रोही,** अध्यक्ष

चीन आखिर चाहता क्या है? भारत के पास विकल्प क्या हैं?

❑ शिव कांत

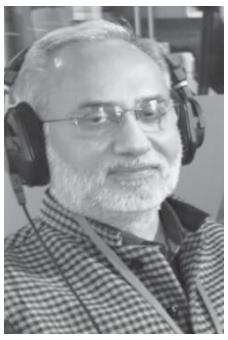

चाणक्य ने कहा था कि शत्रु को पहले कूटनीति से परास्त करके मित्रहीन बना लेने के बाद ही उस पर वार करना चाहिए. वर्तमान में यदि किसी देश को मित्रहीन माना जा सकता है तो वह भारत नहीं, बल्कि चीन है. चीन के वुहान शहर से फैली कोविड-19 की महामारी ने लगभग पूरी दुनिया को तबाह कर रखा है. सभी देश महामारी से जूझ रहे हैं और इसकी चेतावनी देने में देरी करने और अपने यहाँ से जाने वाली उड़ानों को बंद न करने के लिए चीन को कोस रहे हैं. अमरीका तो चीन से इतना नाराज़ है कि रिश्ते सत्तर के दशक से पहले के दौर में जाते दिख रहे हैं. अमरीका के साथ चल रही अनबन की छाया कैनडा और चीन के रिश्तों पर भी पड़ी है. कैनडा ने चीनी हुआवे कंपनी के अधिकारियों को गिरफ्तार किया था. चीन ने कैनडा के दो व्यापारियों को जासूसी के आरोप में गिरफ्तार कर लिया है. चीन ने ऑस्ट्रेलिया और वियतनाम से भी दुश्मनी मोल ले ली है. ताईवान और फिलीपीन्स के साथ तो उसके झगड़े चलते ही रहते हैं. अपने सुरक्षा कानून को हांग-कांग में भी लागू करने का प्रस्ताव लाकर उसने हांग-कांग ही नहीं, सारी दुनिया को नाराज़ कर लिया है.

दुनिया भर में हो रही निंदा और चिंता के इस माहौल को शांत करने के लिए कोई शांति और सुलह का क़दम उठाने के बजाय चीन ने भारत के साथ चले आ रहे पुराने सीमा-विवाद को और भड़का लिया है. अक्साई चिन की गलवान घाटी में भारतीय सैनिकों पर रात के अंधेरे में किए गए हमले की दुनिया भर के समाचार माध्यमों में निंदा हो रही है. चीन की आक्रामक नीति को लेकर न्यूयॉर्क टाइम्स, वॉशिंगटन पोस्ट, गार्डियन, ऑब्ज़र्वर, टाइम्स और इकॉनॉमिस्ट जैसे प्रतिष्ठित समाचार माध्यमों के साथ-साथ मेल और सन जैसे लोकप्रिय टैब्लॉएड अख़बारों ने भी चीन और भारत की सेनाओं के बीच हुई झड़प और उससे बढ़े तनाव को लेकर रिपोर्टें, टिप्पणियाँ और लेख छापे हैं.

किसी को यह बात समझ में नहीं आ रही कि चीन को ऐसी विषम परिस्थिति में भारत से झगड़ा मोल लेने की क्यों सूझी है. कुछ लेखकों का मानना है कि चीन लद्दाख को केंद्र शासित प्रदेश बनाकर अक्साई चिन पर हक़ दोहराने के भारत के क़दम से आशंकित है और भारत को बाँध कर रखना चाहता है. लेकिन अक्साई चिन पर तो भारत ने हमेशा से अपना दावा रखा है. लद्दाख़ को केंद्र शासित प्रदेश बनाने से चीन के किसी काम में साफ़ तौर पर कोई अड़चन आती दिखाई नहीं देती. कुछ लोग मानते हैं कि चीन डारबुक से दौलत बेग ओल्डी सैनिक अड्डे को जोड़ने वाली भारत की नई सड़क से आशंकित है, जो श्योक नदी के किनारे-किनारे बनी है. लेकिन इस सड़क को बनते हुए तो तेरह साल हो गए और यह पिछले साल बनकर तैयार भी हो गई थी. उसके लिए इस समय सीमा में घुसपैठ करने से क्या हासिल हो सकता है? वैसे वास्तविक नियंत्रण रेखा के आसपास सड़कों का जाल बिछाने की शुरुआत तो ख़ुद चीन ने ही की थी. भारत तो केवल उसके जवाब में अपने बचाव का प्रबंध कर रहा है.

कुछ लोग मानते हैं कि चीन, भारत की अमरीका के साथ बढ़ती दोस्ती से चिंतित है. उसे भारत, अमरीका, जापान और ऑस्ट्रेलिया की गोलबंदी से डर है. लेकिन भारत की सीमा में घुसने से यह गोलबंदी और भारत की अमरीका से बढ़ती दोस्ती कमज़ोर होगी या और गहरी होगी? ब्लूमबर्ग में छपे अपने लेख में मिहिर शर्मा ने चीन की इस चाल पर आर्थिक दृष्टि से कुछ सवाल उठाए हैं. जबकि चीन की तरफ़ से लिखने वाले कुछ टीकाकारों का विचार है कि भारत कोविड-19 महामारी से मिले मौक़े का फ़ायदा उठा कर अमरीका और यूरोप को जाने वाली सप्लाई चेन को चीन से हड़पना चाहता है.

चीन भारत को सीमाओं की रक्षा में उलझाकर अपना क्षेत्रीय प्रभाव फैलाना और भारत को व्यापार प्रतिद्वंद्वी बनने से रोकना चाहता है. यदि यह सही है तो यह बहुत बड़ी भूल है. क्योंकि यदि अमरीका ने यही सोच कर चीन को उलझाए रखा होता और आगे न बढ़ने दिया होता तो न तो चीन विकास कर पाता और न अमरीका. भारत आबादी में चीन के लगभग बराबर का देश है. अभी चीन के व्यापार भागीदारों में उसका स्थान बारहवाँ सही, लेकिन यह आँकड़ा बहुत जल्दी बदलेगा और भारत उसका एक बड़ा साझीदार बनकर उभर सकता है. इतनी बड़ी मंडी के लोगों को नाराज़ करके चीन अपना तो बहुत बड़ा नुकसान कर ही रहा है, पूरी दुनिया के विकास में रोड़े अटका रहा है.

इकॉनोमिस्ट में डेविड रेनी ने लिखा है कि अपने पड़ोसियों और नज़दीकी देशों पर दादागिरी कायम रखना चीनी कूटनीति की एक ख़ासियत रही है. वह ख़ुद तो लड़ाई में नहीं उलझना चाहता पर अपना दबदबा कायम रखने के लिए उन देशों को उलझाए रखना चाहता है, जो उसे चुनौती दे सकते हैं. ब्रितानी अख़बार ऑब्ज़र्वर में छपे एमा ग्राहम हैरिसन के लेख में कुछ जाने-माने चीन विशेषज्ञों ने चीन के सीमा अतिक्रमण के बारे में अपनी-अपनी राय दी है. जर्मन मार्शल फ़ंड के वरिष्ठ सदस्य एंड्रयू स्मॉल का मानना है कि चीनी सेना वास्तविक नियंत्रण रेखा के कई मोर्चों पर पिछले कई वर्षों से अपनी स्थिति मज़बूत करती आ रही है. चीन ने केवल गश्त लगाने के बजाय सेना को स्थाई रूप से तैनात कर दिया है और पक्की सड़कों तथा ठिकानों का जाल बिछाया है. यह हमला स्थानीय कमांडरों के तैश का नहीं, बल्कि सर्वोच्च कमान से मिली हरी झंडी का नतीजा है.

अमरीकी शोध संस्थान के निदेशक टेलर फ्रेवल का मानना है कि चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग, कोविड-19 की महामारी की वजह से दुनिया भर में हुई बदनामी, अमरीका के साथ बढ़ते झगड़े और अर्थव्यवस्था की बुरी हालत की वजह से इन दिनों गहरे राजनीतिक दबाव में हैं. भारत, वियतनाम, हांग-कांग और ताईवान को लेकर आक्रामक होते चीन के तेवर इसी का नतीजा हैं. शी जिनपिंग जनता का ध्यान महामारी और आर्थिक बदहाली से हटाकर चीन पर निशाना साध रहे दुश्मनों की ओर लगाना और राष्ट्रवाद की भावना को हवा देना चाहते

हैं. भारत के खिलाफ़ शी जिनपिंग की आक्रामक नीति दिखाती है कि भारत को लेकर उनकी समझ कितनी कमज़ोर है. गलवान घाटी में हुए हमले जैसी घटनाओं से चीन भारत की उस नई पीढ़ी को भी खो बैठेगा, जो अतीत की दुश्मनी को भुला कर नया अध्याय खोल सकती थी.

तो फिर चीन की चाल और रणनीति आखिर क्या है? वॉशिंगटन स्थित स्टिमसन सेंटर के चीनी अध्ययन केंद्र के निदेशक युन सुन ने टैक्सास नेशनल सिक्योरिटी रिव्यू में छपे अपने लेख में इस पर गंभीरता से विचार किया है. युन सुन का मानना है कि गलवान घाटी में हुई झड़प भले ही योजना बना कर न की गई हो, लेकिन चीन वास्तविक नियंत्रण रेखा और उसके आसपास बड़े योजनाबद्ध तरीके से काम कर रहा है. भारत की तरह चीन में भी पंचवर्षीय योजनाएँ बनती हैं, जिनमें भावी कार्यक्रम तय किए जाते हैं. दसवीं से बारहवीं पंचवर्षीय योजनाओं में शिनजियांग, तिब्बत और इनर मंगोलिया जैसे सीमावर्ती प्रांतों के भीतर सड़कों और पुलों के जाल बिछाए गए. इन दिनों चल रही तेरहवीं पंचवर्षीय योजना में सीमावर्ती प्रांतों को आपस में जोड़ने वाली सड़कों और पुलों के जाल बिछाए जा रहे हैं, ताकि सीमावर्ती इलाकों को चीन के बेल्ट एंड रोड कार्यक्रम के साथ जोड़ कर रखा जा सके. डोकलाम, पैंगांग झील और गलवान घाटी में बनाई जा रही सड़कें और सैनिक ठिकाने इसी का हिस्सा हैं.

युन सुन का मानना है कि चीन वास्तविक नियंत्रण रेखा को नियंत्रण रेखा में बदलना चाहता है. चीन जानता है कि सीमा को लेकर भारत और चीन के आपसी मतभेद इतने गहरे हैं कि उन्हें किसी समझौते से हल नहीं किया जा सकता. चीन चाहता था कि रूस के साथ सीमा विवाद के हल की तरह भारत के साथ सीमा विवाद का भी कोई हल निकल आए. इसके लिए उसने अक्साई चिन के बदले अरुणाचल प्रदेश पर अपना दावा छोड़ने का प्रस्ताव रखा था. 1960 से लेकर 1980 तक चीन प्रस्ताव को रखता रहा और भारत इसे ठुकराता रहा, क्योंकि 1962 की लड़ाई के बाद चीन अरुणाचल प्रदेश से हट चुका था और अरुणाचल पहले से ही भारत के कब्ज़े में था. इसलिए भारत अक्साई चिन की और जगह क्यों देता? लिहाज़ा चीन ने 1980 के बाद से अरुणाचल के भूटान से लगते तवांग जिले पर दावा करना शुरू कर दिया, क्योंकि तवांग में दलाई लामा का जन्म हुआ था. इसलिए यदि तवांग भारत में रहता है तो दलाई लामा भारतीय हो जाते हैं और तिब्बत पर चीन के कब्ज़े को चुनौती मिल सकती है. भारत ने उसे भी ठुकरा दिया. नतीजा यह हुआ कि चीन ने सीमा विवाद सुलझाने में रुचि लेना बंद कर दिया और केवल सीमा प्रबंधन यानी सीमा पर शांति बनाए रखने की बातें करने लगा.

अब चीन सीमा विवाद को सुलझाने के बजाय धीरे-धीरे सीमा के अधिक से अधिक हिस्से को अपने कब्ज़े में लेना चाहता है. लद्दाख की सीमा की बात करें तो चीन 1959 की सीमा को सही मानता है और भारत 1962 की लड़ाई के बाद की सीमा को सही मानता है. दोनों सीमाओं के बीच कई जगहों पर कई-कई किलोमीटर का अंतर है. भारत की अपनी एक नियंत्रण रेखा है, जहाँ तक उसकी सेना अपने स्थाई मोर्चे बना सकती है. इसी तरह चीन की अपनी नियंत्रण रेखा है, जहाँ तक उसकी सेना को स्थाई मोर्चे बनाने का अधिकार है. दोनों के बीच चार से दस किलोमीटर की विवादास्पद पट्टी है, जिसमें दोनों की सेना आधी-आधी दूरी तक गश्त लगा सकती है, पर हथियारों का इस्तेमाल नहीं कर सकती. आमना-सामना होने पर दोनों बैनर लगा कर एक-दूसरे को अपनी सीमा में रहने की चेतावनी देते हैं और वापस चले जाते हैं. यह व्यवस्था 1993 से चली आ रही है. लेकिन हाल के महीनों में दोनों के बीच पथराव, डंडेबाज़ी और हाथापाई की घटनाएँ होने लगी हैं.

युन सुन का मानना है कि इस समय चीन के तीन रणनीतिक उद्देश्य हैं. पहला, वास्तविक नियंत्रण रेखा के विवादास्पद हिस्सों में अपनी घुसपैठ बढ़ा कर जहाँ तक हो सके, उन्हें अपने कब्ज़े में लेना ताकि अगर कभी नियंत्रण रेखा तय करने की बात उठे तो चीन को पीछे न हटना पड़े. दूसरा, सीमावर्ती क्षेत्र में सड़कों और पुलों का जाल बिछा कर सेना की तैनाती आसान बनाना और तीसरा, भारत को अपनी सीमा के भीतर बराबरी की तैयारी करने से रोकना और उलझाए रखना. चीन सीधी लड़ाई लड़े बिना अपने ये तीनों लक्ष्य पूरे करना चाहता है और अभी तक अपने काम में भारत से आगे है. गलवान घाटी की मिसाल को लें, तो चीन ने नियंत्रण सीमा तक पक्के मोर्चे बना रखे हैं, सड़कों का बेहतर जाल बिछा लिया है, दो सैनिक अड्डे बना लिए हैं और उपग्रह की तस्वीरें देखने से पता चलता है कि गलवान नदी के बहाव को भी मोड़ लिया है, ताकि ज़रूरत पड़े तो सूखी नदी के रास्ते श्योक नदी के किनारे पड़ने वाली भारत की डारबुक-ओल्डी सड़क तक पहुँचा जा सके. भारत भी गलवान घाटी के भारतीय हिस्से में सड़क और पुल बना रहा था, जिसे लेकर गलवान की झड़प हुई. उपग्रह तस्वीरों में देखा जा सकता है कि किस तरह चीन ने गलवान घाटी में टैंक, तोपख़ाना और पक्के सैनिक बंकर बना रखे हैं.

इसी तरह चीन ने पैंगोंग झील की पहाड़ी नंबर चार के पास भी पक्के मोर्चे बना लिए हैं. भारत का दावा है कि उसकी सेना पहाड़ी नंबर आठ तक गश्त लगाने जाती रही है और वास्तविक नियंत्रण रेखा पहाड़ी नंबर आठ के पीछे से होकर गुज़रती है. लेकिन चीनी सैनिकों ने पहाड़ी नंबर चार तक अपने पक्के मोर्चे बना लिए हैं और वे दावा कर रहे हैं कि नियंत्रण सीमा पहाड़ी नंबर दो के पीछे से होकर गुज़रती है. वे भारतीय सैनिकों को पहाड़ी नंबर दो से आगे नहीं आने दे रहे हैं. ऐसा भी लग रहा है कि चीन ने गलवान घाटी में भारतीय सैनिकों पर हमला करने के साथ-साथ गलवान नदी का रोका हुआ पानी भी छोड़ दिया था. हाथापाई के दौरान तेज़ ढलानों से फिसल कर गलवान के बर्फीले पानी में गिरने से भी कई भारतीय सैनिकों की मौत हुई.

चीनी सैनिकों की संख्या, जुगाड़ से बनाए हुए हथियारों के प्रयोग और रात के समय घात लगाकर किए गए हमले को देखकर आसानी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गलवान का हमला सुनियोजित था. इसलिए भारत ने वास्तविक नियंत्रण रेखा क्षेत्र में बिना हथियारों के गश्त लगाने की व्यवस्था को बदलते हुए कमांडरों को ख़ास परिस्थितियों में ज़रूरत पड़ने पर हथियारों का प्रयोग करने का अधिकार दे दिया है. इसके अलावा चीन के सीमा अतिक्रमण को रोकने के लिए भारत ने अपनी पहाड़ी लड़ाई में प्रशिक्षित सेना को भी तैनात कर दिया है. रूस के विदेशमंत्री सर्गेई लावरोफ़, भारतीय विदेशमंत्री डॉ जयशंकर और

चीनी विदेशमंत्री वांग यी की एक वीडियो बैठक करा रहे हैं और भारत के रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह रूस की यात्रा पर हैं.

लगता है कि रूस, भारत और चीन के बीच सुलह कराने की कोशिश कर रहा है. अमरीकी राष्ट्रपति ट्रंप ने पहले भी भारत और चीन के बीच मध्यस्थता करने का प्रस्ताव रखा था. उन्होंने गलवान की झड़प के बाद भी कहा है कि वे इस पर नज़र रखे हुए हैं और भारत तथा चीन दोनों से बातें कर रहे हैं. विदेशमंत्री मार्क पोम्पेयो ने चीनी हमले की कड़ी निंदा की और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को बेलगाम ताकत बताया. शी जिनपिंग की कम्युनिस्ट पार्टी वही पार्टी है, जिसके हाथ तियानामन चौक के हज़ारों प्रदर्शनकारियों के ख़ून से रंगे हैं. माओ के शासनकाल में इसी पार्टी की नीतियों और अत्याचारों से करीब छह करोड़ लोग मारे गए थे.

अब सवाल उठता है कि चीन को लेकर भारत के पास विकल्प क्या हैं और अमरीका या उसके दूसरे साथी देश नैतिक समर्थन के अलावा भारत की क्या मदद कर सकते हैं? सीमा पर तनातनी के बाद भारत को लद्दाख की सीमा के साथ-साथ सियाचिन की रक्षा के लिए भी स्थाई रूप से सेना तैनात रखनी होगी. अभी तक भारत को अरुणाचल और सिक्किम की सीमा पर स्थाई रूप से सेना तैनात रखनी पड़ती थी. लद्दाख की शून्य से बीस डिग्री नीचे के तापमान वाली सीमाओं पर दोनों देश अस्थाई रूप से सेना रखते थे, जो केवल गश्त का काम करती थी. पर अब दोनों को स्थाई रूप से सेना रखनी होगी, अमरीका अपने हथियार और सैनिक सामान बेच कर मदद कर सकता है. सुरक्षा परिषद में साथ दे सकता है. लेकिन सीमा की हिफ़ाजत तो भारत को स्वयं ही करनी होगी. यदि सीमा पर चौकसी रखी होती तो गलवान घाटी में और पैंगांग झील की उत्तरी पहाड़ियों पर चीन का कब्ज़ा हो ही क्यों पाता? चीन की तरफ़ बन रही सड़कों, पक्के मोर्चों और सेना की बढ़त की ख़बर तो भारतीय सेना को होनी चाहिए थी. बल्कि उसकी संभावना से पहले ही मुकाबले के लिए सेना तैनात रहनी चाहिए थी. डोकलाम के बाद भी यदि भारत की सेना और सरकार सबक नहीं सीखती है तो इसमें अमरीका और रूस क्या करेंगे?

-मीडिया स्वराज

भारत-चीन तनाव

एशिया के दो क़द्दावर मुल्कों में तनाव बढ़ा, तो दुनिया भुगतेगी ख़मियाज़ा

❑ **जुबैर अहमद**

भारत और चीन के बीच गंभीर रूप से बढ़ते सैन्य और राजनयिक तनाव के माहौल में दुनिया की दूसरी और पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के बीच अलगाव की बातें की जाने लगी हैं. भारत के कई विश्लेषक चीन से व्यापारिक रिश्ते तोड़ने की बातें कर रहे हैं और कैमरे के सामने कुछ भावुक नागरिक चीन में बने अपने सामान तोड़ते हुए दिखने लगे हैं. ऐसा लग रहा है कि अचानक से देश का 'दुश्मन नंबर एक' पाकिस्तान नहीं, चीन बन गया है.

लाइन ऑफ़ एक्चुअल कंट्रोल

लाइन ऑफ़ एक्चुअल कंट्रोल पर हुई हिंसा और इसमें 20 भारतीय सैनिकों की मौत के कारण मोदी सरकार चीन के खिलाफ़ कुछ करने के ज़बरदस्त दबाव में है. सरकारी और ग़ैर सरकारी स्तर पर कुछ ऐसे क़दम उठाए जा रहे हैं, जिनसे दोनों देशों के बीच दूरियाँ बढ़ने लगी हैं. समाचार एजेंसी रॉयटर्स के अनुसार भारत सरकार ने आयात किए जाने वाले 300 ऐसे सामानों की सूची तैयार की है, जिन पर टैरिफ बढ़ाए जाने पर विचार किया जा रहा है. चीन का नाम नहीं लिया गया है, लेकिन समझा ये जा रहा है कि चीनी आयात पर निर्भरता कम करने के लिए ये क़दम उठाए जा रहे हैं.

उधर, कन्फ़ेडरेशन ऑफ़ ऑल इंडिया ट्रेडर्स (सीएआईटी) ने बहिष्कार किए जाने वाले 500 से अधिक चीनी उत्पादों की सूची जारी की है. व्यापारी संघ ने कहा है कि उनका उद्देश्य दिसंबर 2021 तक चीनी माल के आयात को 13 अरब डॉलर या लगभग 1 लाख करोड़ रुपए कम करना है. पिछले हफ्ते चीनी हैंडसेट निर्माता ओप्पो ने भारत में चीनी उत्पादों के बहिष्कार के आह्वान के बीच देश में अपने प्रमुख स्मार्ट फ़ोन की लॉन्चिंग को रद्द कर दिया है.

रिश्ते टूटने से दोनों देशों को नुक़सान

मुंबई में आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ रघुवीर मुखर्जी कहते हैं कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है. चीन के साथ सीमा विवाद के मद्देनज़र उठाए जाने वाले क़दमों से भारत में फार्मा, मोबाइल फ़ोन और सौर ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में अड़चनें पैदा हो सकती हैं. कई विशेषज्ञ मानते हैं कि आपसी दुश्मनी और टकराव में दोनों देशों को फ़ायदा कम, नुक़सान ज्यादा है, ख़ास तौर से भारत को अधिक नुक़सान हो सकता है.

चीन में सिचुआन विश्वविद्यालय के चाइना सेंटर फॉर साउथ एशियन स्टडीज़ के प्रोफ़ेसर ह्वांग युंगसांग की दलील है कि यह एक गंभीर मुद्दा ज़रूर है, लेकिन इसे सुलझाना मुश्किल नहीं है. वे कहते हैं कि हिमालय के दोनों तरफ़ होने वाले व्यापार को पूरी तरह से रोकने की वकालत करना गैर-जिम्मेदाराना बात है, ख़ास तौर से ऐसे समय में, जब दोनों तरफ़ के नेता स्थिति को शांत करने और इसे अधिक बिगड़ने से रोकने के लिए काफ़ी प्रयास कर रहे हैं.' अगर भारत-चीन तनाव ने तूल पकड़ा तो दोनों देशों के अलावा दुनिया भर पर इसका बुरा असर होगा.

प्रोफ़ेसर ह्वांग युंगसांग कहते हैं कि यह त्रासदी अप्रत्याशित है और दोनों पक्षों को, अर्थव्यवस्था सहित अन्य मोर्चों पर और नुकसान नहीं होने देना चाहिए. अन्यथा, न केवल विश्व अर्थव्यवस्था को भारी नुक़सान होगा, बल्कि दो प्राचीन एशियाई सभ्यताओं का पुनरुद्धार भी बाधित हो सकता है. चीन और भारत के पास निश्चित रूप से इस झटके से बचने का ज्ञान और दृढ़ संकल्प है.

भारत और चीन के बीच झगड़े में तीसरे पक्ष का फ़ायदा

स्विट्ज़रलैंड में जिनेवा इंस्टीट्यूट ऑफ़ जिओपॉलिटिकल स्टडीज़ के शिक्षा निदेशक

डॉक्टर अलेक्जेंडर लैंबर्ट चीन के मामलों के विशेषज्ञ हैं. भारत और चीन के बीच तनाव पर भारतीय मीडिया और नागरिकों में चीन के खिलाफ़ नाराज़गी के बावजूद वे चीन को भारत का, अमरीका और पश्चिमी देशों से मज़बूत दोस्त मानते हैं. वे कहते हैं कि दोनों देशों के बीच तनाव का फ़ायदा दूसरे देश उठाने की कोशिश कर सकते हैं.

प्रोफ़ेसर ह्वांग युंगसांग कहते हैं कि अगर भारत के चीन के साथ व्यापारिक संबंध बाधित होते हैं, तो संभावित लाभार्थी भारत और चीन के अलावा कोई भी देश हो सकता है. भौगोलिक रूप से कहें तो, अमरीका और उसके कुछ सहयोगी चीन और भारत को एक दूसरे के खिलाफ़ करके खुश होंगे. आर्थिक रूप से, आसियान और विकसित देशों के उत्पादक भारतीय बाज़ार में चीनी सामानों के बजाय अपने सामान बेचने में रुचि दिखा सकते हैं।

विकासशील अर्थव्यवस्था

भारत आज भी दुनिया के एक चौथाई ग़रीबों का घर है. संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, इसके 39% ग्रामीण निवासी स्वच्छता सुविधाओं से वंचित हैं और लगभग आधी आबादी अभी भी खुले में शौच करती है. कोरोना वायरस की महामारी के दौरान ये साबित हो गया कि भारत में असमानता चीन से कहीं अधिक है. सरकारी स्वास्थ्य सिस्टम में कमियाँ हैं. इस महामारी ने दोनों देशों के करोड़ों लोगों को एक बार फिर से ग़रीबी की तरफ धकेल दिया है. इसके बावजूद यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि ये दो उभरती हुई दिग्गज अर्थव्यवस्थाएँ आने वाले दशकों में वैश्विक अर्थव्यवस्था को कई तरीक़ों से बदल देंगी.

पीटरसन इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स के निकोलस लार्डी अपने एक लेख में लिखते हैं कि भारत और चीन दो ऐसे देश हैं, जो अब भी विकासशील अर्थव्यवस्था की श्रेणी में हैं, जिसका मतलब यह हुआ कि इन दोनों देशों में विकास की गुंज़ाइश अब भी बहुत है. भारत का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि इसका वैश्विक व्यापार में योगदान चीन की तुलना में काफ़ी कम है. भारत अब भी दुनिया के ट्रेड को आगे बढ़ाने की क्षमता रखता है. इसके अलावा, दोनों देशों की आबादी, ख़ास तौर से भारत की युवा आबादी इसकी एक बड़ी ताक़त है. ह्वांग युंगसांग इसे दोनों देशों की एक बड़ी शक्ति के रूप में देखते हैं और आग्रह करते हैं कि दोनों अर्थव्यवस्थाएँ मिल कर काम करें.

भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार

भारत और चीन के बीच सामानों के आपसी व्यापार के विकास की कहानी उत्साहजनक है. साल 2001 में इसकी लागत केवल 3.6 अरब डॉलर थी. साल 2019 में द्विपक्षीय व्यापार लगभग 90 अरब डॉलर का हो गया. चीन भारत का सबसे बड़ा ट्रेडिंग पार्टनर है. यह रिश्ता एक तरफ़ा नहीं है. अगर आज भारत सामान्य दवाओं में दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक है, तो इसमें चीन का भी योगदान है, क्योंकि सामान्य दवाओं के लिए कच्चा माल चीन से ही आता है.

साल 1962 के युद्ध और लाइन ऑफ़ एक्चुअल कंट्रोल में सालों से जारी तनाव के बावजूद आपसी व्यापार बढ़ता रहा है. भारत की तरफ़ से यह शिकायत रहती है कि द्विपक्षीय व्यापार में चीन का निर्यात दो-तिहाई है. लेकिन अर्थशात्री विवेक कौल के अनुसार, 'इसे घाटे की तरह नहीं देखना चाहिए. चीन से हम सामान इसलिए ख़रीदते हैं, क्योंकि भारत के ग्राहकों को उसकी क्वॉलिटी और क़ीमत दोनों सही लगती है. इसके ठीक उलट भारत और अमरीका के साथ है. यानी अमरीका का भारत के साथ ट्रेड डेफिसिट बड़ा है, लेकिन अमरीका ने भारत से इसकी शिकायत कभी नहीं की है.'

ट्रेड वार विकल्प नहीं

विशेषज्ञों की आम राय यह है कि अमरीका और चीन के बीच जारी ट्रेड वॉर में दोनों देशों को नुक़सान हुआ है. लेकिन अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की ओर से फ़रवरी 2018 में शुरू की गई यह व्यापारिक लड़ाई अमरीका को अधिक महँगी पड़ रही है.

ट्रंप की कोशिशों के बावजूद अमरीकी कंपनियों ने चीन में अपनी फ़ैक्टरियों में ताला नहीं लगाया है. हाँ, कुछ कंपनियों ने चीन प्लस वन फ़ॉर्मूला ज़रूर अपनाया है, जिसका अर्थ यह है कि इन कंपनियों ने अपने उद्योग के कुछ हिस्से को वियतनाम जैसे देशों में ले जाने का फ़ैसला किया है.

प्रोफ़ेसर ह्वांग युंगसांग के अनुसार भारत और चीन एक दूसरे के साथ मिल कर आगे बढ़ें, तो दोनों देशों की आबादी आर्थिक समृद्धि की तरफ़ बढ़ सकती हैं. इन देशों के पास टेक्नोलॉजी और इनोवेशन दोनों मौजूद है. यह आने वाले कुछ सालों में अर्थव्यवस्था को तेज़ी से आगे बढ़ाएंगे.

चीन अमरीका के मुक़ाबले का एक वर्ल्ड पावर बनना चाहता है. लेकिन सियासी कमेंटेटर्स कहते हैं कि इसके लिए उसे अपने पड़ोसियों से शांति बनाकर रखना ज़रूरी होगा. भारत भी दुनिया के बड़े और शक्तिशाली देशों में शामिल होना चाहता है. भारत को भी अपने पड़ोसियों और अन्य देशों के साथ रिश्ते अच्छे रखने पड़ेंगे.

चीन संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का एक स्थायी सदस्य है और 17 जून को भारत अगले दो साल के लिए इसके 10 अस्थायी सदस्यों में से एक हो गया है. परिषद की सदस्यता के लिए दुनिया में शांति स्थापित करने की कोशिश करना ज़रूरी है. दोनों देशों की संयुक्त आर्थिक शक्ति के अलावा शायद यही एक ऐसा बड़ा प्लेटफ़ॉर्म है, जहाँ दोनों देशों की संयुक्त सियासी शक्ति का भी इज़हार संभव है, जिससे न सिर्फ दोनों देशों के लोगों को फ़ायदा होगा बल्कि आने वाले कुछ सालों में विश्व को कोरोना महामारी के संकट से निकालने में भी मदद मिल सकती है. ❑

सर्वोदय जगत

कोविड-19 और तालाबंदी के कारण सर्वोदय जगत के माह अप्रैल, मई व जून के छः अंकों का मुद्रण नहीं हो सका, पर प्रतिकूलताओं के बावजूद इस अवधि में हम सर्वोदय जगत का ई-संस्करण सुधी पाठकों तक पहुंचाते रहे हैं। अब जब धीरे-धीरे व्यवस्थाएं खुलना शुरू हो रही हैं, तो इस अंक से मुद्रित संस्करण हम पाठकों की सेवा में उपलब्ध करा रहे हैं। यद्यपि अभी भी कहीं डाक विभाग के अवरोध बने हुए हैं, इसके बावजूद हम आशा करते हैं कि इस अंक से सर्वोदय जगत आप तक पहुंचता रहेगा। कृपया अपना सहयोग बनाये रखें। **-सं.**

ललित चिन्तन

कबीर का घर
(जिन बूड़ा तिन पाइयां)

❑ डॉ. उमेश प्रसाद सिंह

कबीर की वाणी में आग है। पानी से पैदा हुई आग। जिसको छू लेती है, वह जल उठता है। वह शास्त्रज्ञान के दंभ से छू जाती है, तो वह जल उठता है, सूखे खर-पतवार की तरह। वह बड़प्पन के अभिमान को छू देती है, तो वह जल उठता है, कूड़े-करकट की तरह। वह अवधारणाओं की विद्वता की गठरी ढोने वाले गदहे की पीठ पर पड़ जाती है तो गदहा पाँव सिर पर उठाकर ची-पों-ची-पों चिल्लाने लगता है। अधिकार का सिंहासन हिलने लगता है। तपस्या का आसन डोलने लगता है। सेवा का कण्ठ सूखने लगता है। त्याग का कलेजा काँपने लगता है। वैराग्य का पाँव थरथराने लगता है। ज्ञान का गुमान चौखाने चित्त हो जाता है। कबीर के साथ होने में बड़ी असुविधा है।

दुनिया को अपनी दुकान चलानी है। धर्मनिरपेक्षता की दुकान, धर्मान्धता की दुकान, सहिष्णुता-असुहिष्णुता की दुकान, देश के विकास की दुकान, राष्ट्रभक्ति की दुकान, वंचितों के उत्थान की दुकान। सत्ता-सुख के हाट में हर किसिम की दुकान है। सही और गलत की दुविधा, अच्छे और बुरे की दुविधा, ठीक-बेठीक की दुविधा में अगर लोग घिरे न हों तो दुकान चले कैसे? सभी दुकानों का अपना लोकतंत्र है। लोकतंत्र की अपनी दुकानें है। हमारे लोकतंत्र की दुकानें, हमें सारे गलत में से किसी को सही चुनने की आजादी देती हैं। सारे बेठीक में से किसी एक ठीक को चुनने की स्वतंत्रता देती हैं। हम इस स्वतंत्रता पर आत्ममुग्ध होते हैं। खुश होते हैं। अपनी दुविधा की झेंप मिटाने के लिए किसी गलत को सही चुनकर अपने चुनाव के अधिकार पर आत्मतुष्ट होते हैं। आत्मगौरव से अभिभूत होते हैं।

हमारे लोकतंत्र में सारी दुकानों को विज्ञापन के लिए संविधान में अधिकार है। इधर बाजार का अलग ही संविधान है। बाजार का संविधान मुनाफे का संविधान है। झूठ को सच की तरह परोसने का संविधान है। झूठ को सच की तरह परोसने के लिए बाजार ने विज्ञापन की कला विकसित की है। विज्ञापन की भाषा छल की भाषा है। झूठ में सच का प्रतिभास कराने वाली भाषा है। दुनिया इस भाषा पर हमेशा से ही विश्वास करती आ रही है। हमेशा से ही मोहित होती आ रही है। कबीर की कविता बाजार के विरुद्ध कविता है। कबीर की कविता विज्ञापन की भाषा की कविता नहीं है। वह सत्य के प्रतिभास की नहीं, सत्य की कविता है। झूठ को झूठ और सच को सच कहने का जो साहस, कविता को कबीर ने दिया है, उसकी कोई मिसाल नहीं है।

कबीर का विरोध पण्डित से नहीं था। मौलवी से नहीं था। मन्दिर से नहीं था। मस्जिद से नहीं था। उनका विरोध छल से था। आचरण के छल से। भाषा के छल से। पाण्डित्यविहीन पण्डित होना छल है। ईमान और दीन से हीन इबादत से दूर रहकर मौलवी होना छल है। भगवान से रहित मन्दिर और खुदा से सूनी मस्जिद छल है। यह सब मनुष्य के साथ व्यवस्था का छल है। कबीर की कविता व्यवस्था विरोधी कविता है।

व्यवस्था के बाजार में कबीर लुकाठी लिए खड़े हैं। जलती लुकाठी। उनके हाथ में वही लुकाठी है, जिससे उन्होंने अपना घर जला दिया है। कबीर बीच बाजार में खड़े हैं। बाजार सदमे में है। बाजार बड़े संकट में है। आखिर इस आदमी से कैसे निबटा जाय। कोई तरकीब? तरकीब बाजार की स्मृति में नहीं है। हो भी कैसे! ऐसे आदमी से सामना ही कहाँ करना पड़ता है। ऐसा आदमी हमेशा तो होता नहीं। कभी-कभी कोई हो जाता है, शताब्दियों में। जब हो जाता है, तो बाजार बेचैन हो उठता है। कबीर को लेकर बाजार में बेचैनी है।

बाजार की आँख में कबीर किरकिरी हैं। कबीर की अवहेलना कर देना, इन्कार कर अवरुद्ध कर देना संभव नहीं है। नहीं, ऐसे आदमी को डराया नहीं जा सकता। ऐसे आदमी को लुभाया नहीं जा सकता। जो अपना घर जला चुका हो, वह डरेगा? जिसने घर ही फूँक दिया, उसे लोभ क्या दिया जा सकता है? बड़ा मुश्किल है। जिसने अपना घर जला दिया हो, वह किसी का भी घर जला सकता है। जाने कितनों के घर जला सकता है। अगर वह ऐसे ही घरों को जलाता गया, तो? सब घर जल जायेंगे, घर न होंगे तो बाजार का भला क्या होगा? यह सोचकर और कबीर को देखकर बाजार का कण्ठ सूख जाता है। पसीना छूट जाता है। कबीर के सामने बाजार पसीने-पसीने है।

कबीर ने अपना वह घर जला दिया था, जिसे बाजार ने बनवाया था। आदमी समझे, न समझे, घर हमेशा ही बाजार बनवाता रहा है। कबीर ने समझ लिया था। जान लिया था कि हमारा घर बाजार के दिमाग की उपज है। घर कहने को तो हमारा है, मगर उसका जनक बाजार है। उसका नियन्ता बाजार है। उसका नियामक बाजार है। हमारे घर में वेश बदलकर, भाषा बदलकर बाजार घुस आया है। घुसा पड़ा है। पहले आता है, तो दबे पाँव दुबककर। जब आ जाता है तो धीरे-धीरे पाँव पसारता चला जाता है। पाँव पसारते-पसारते पूरा घर ही कब्जा कर लेता है।

हमारा घर कैसा हो? हमारे घर में क्या-क्या हो? क्या, कहां हो? किस तरह से हो। हमारा घर क्या खाये? क्या पहने? कैसे रहे? क्या बोले? यह सब बाजार तय करेगा। बाजार, बाजार नहीं, तानाशाह है क्या? हाँ, है। बाजार ही वास्तव में शासक है, समय का। राजा कोई हो, राज किसी का हो, मर्जी बाजार की चलती है। बाजार के शासन में आदमी के लिए घर, घर न होकर कैदखाना हो जाता है। हम समझते हैं कि हम घर में रहते हैं। मगर रहते हैं कैदखाने में। कैदखाना क्या है? कैदखाना वही है, जहाँ अपनी मर्जी नहीं चलती। दूसरों की चलती है।

दूसरों की मर्जी से जीना, जीना नहीं होता। बोझ होना होता है। जहाँ जिन्दगी बोझ बन जाय, वह घर, घर नहीं कहा जा सकता। वह सिर्फ घर का भ्रम है। कबीर ने यह बात जान ली थी। जब उन्होंने जान लिया तो घर जला दिया। उस घर को जला दिया, जो घर नहीं था, घर का भ्रम था।

घर का भ्रम। भ्रम का घर, कबीर ने फूँक दिया। भ्रम जल गया। अपने समय में घर को फूँककर कबीर ने घर को बचा लिया था। घर फूँककर घर को बचा लेने की उपलब्धि कबीर की कविता की महत्तम उपलब्धि है। मैं समझता हूँ, हमारे समय में जब घर मकान में बदलते जा रहे हैं, उपादान में बदलते जा रहे हैं, कबीर की कविता और अधिक प्रासंगिक हो उठी है। हमारे समय में कबीर के और अधिक प्रासंगिक और अर्थवान हो उठने का तथ्य कविता की महत्ता का जीवित नमूना है।

कबीर ने घर जलाकर घर पा लिया था। दूसरों की मर्जी से जीने की मजबूरी को जला दिया था। वास्तव में कबीर ने मनुष्य की गुलामी को जला दिया था। उन्होंने मनुष्य की गुलाम मानसिकता को जला दिया था। उन्होंने अपनी बेलौस अक्खड़ता में घर में स्वाधीनता को स्थापित किया। हमारा घर स्वाधीनता का घर होना चाहिए। इस बात को कबीर ने बिल्कुल साफ-साफ संभवतः पहली बार कविता में वाणी दी। लोई और कमाल के साथ चरखा से सूत कातकर, कपड़ा बुनकर, बाजार के प्रभुत्व को इन्कार कर, कबीर ने घर की स्वाधीनता और स्वाधीनता के घर की नींव अपनी कविता में रखी है।

गाँधी को चरखा कबीर की कविता ने दिया है। शताब्दियों के बाद कबीर की कविता गाँधी में गूंजती दिखती है। कबीर की कविता का आन्तरिक मर्म साहित्य समीक्षकों की भाषिक समीक्षा में नहीं, गांधी के कर्म में खुलता है। बाजार के प्रभुत्व का प्रतिषेध और घर की स्वाधीनता का उद्घोष, जो शताब्दियों के मौन में गूँज रहा था, गाँधी ने सुना। कबीर पंथ के हजारों-हजार, लाखों-लाख अनुयायियों के सापेक्ष्य गाँधी कबीर के वास्तविक उत्तराधिकारी ठहरते हैं। कबीर की कविता भाषिक साहित्य की सीमाओं का अतिक्रमण कर जन-जीनव में व्याप्त होकर उसे उद्वेलित करने की परम्परा की प्रवर्तक कविता है। कबीर जिस घर में पैदा हुए थे, वह घर उनका नहीं था। नीरू और नीमा का घर, कबीर का घर नहीं था। कबीर ने अपना घर अपने से बनाया था। उनका घर किसी जुलाहे का घर नहीं था। कबीर का घर, कवि का घर था।

कबीर का घर, खाला का घर नहीं था। कबीर के घर पाँव उठाकर घुस आने की सुविधा नहीं थी। कबीर के घर में घुसने के लिए अपना सिर उतारकर हथेली पर रखना होता था। अपने अहं को अपने हाथों काटकर दफनाना पड़ता था। कबीर अपना सिर हथेली पर रखकर ही जीने के अभ्यस्त थे। इसी जिन्दगी को संवारने के लिए उन्होंने घर बनाया था।

कबीर ने जो घर बनाया था, वह खाने और सोने के लिए नहीं था। दुनिया अपने घर में खा-पीकर सुख से सोती है। कबीर का घर तो जागने के लिए है। उनका घर जागृति का घर है। जागने के लिए और जागकर रोने के लिए। जागकर अपने अलावा औरों का दुख देखने के लिए। दूसरों के दुख में रोने के लिए। दूसरों के दुख को दूर करने के मार्ग के संधान में बेचैन होने के लिए। जो केवल अपनी खैर नहीं मांगते, जो सबकी खैर चाहते हैं, वे घर में सुख से सो ही नहीं सकते। वे रात-रात भर जागते हैं। जागकर कविता लिखते हैं। रोते हैं और कविता लिखते हैं। कवि के लिए घर आरामगाह नहीं है। रण क्षेत्र है। उनका घर सुरक्षित होने की जगह नहीं, घायल होने का मोर्चा है। तुलसी भी नहीं सोते। उनकी भी रात सोने के लिए डांसते-डांसते बीत जाती है। कबीर की जागते-जागते, रोते-रोते बीत जाती है। कबीर अपनी कविता में बार-बार और बारंबार बाजार में खड़े होते हैं। बीच बाजार में खड़े होते हैं। हाथ में लुकाठी लेकर खड़े होते हैं। वे किसी के साथ दोस्ती के आकांक्षी नहीं हैं। किसी से दुश्मनी के आराधक नहीं हैं। वे केवल सबकी कुशल के आकांक्षी हैं। कुशल के लिए ही वे आह्वान करते हैं-घर जला दो। घर का भ्रम जला दो। वे बीच बाजार में यह कहते हुए घूमते हैं-

जो फूँकै आपना, चलै हमारे साथ।

कबीर घर में थे। मगर उनके मन में घर नहीं था। उनका घर दूसरों के हिस्से की हँसी हथिया कर गर्दन ऐंठने वाला घर नहीं था। उनका घर दूसरों की आँख का पानी पीकर, चमक चुराकर अपना कलेजा जुड़ाने वाला घर नहीं था। उनका घर एक मनुष्य का नहीं, मनुष्य जाति की मंगलेच्छा का घर था। उनका घर भूख का घर नहीं था। मगर भंडारण का भी घर नहीं था। उनका घर पड़ोस को गरिमा और पारस्परिकता को गौरव प्रदान करने वाला घर था। उनका घर, वह घर था, जिसमें आने वाला कोई साधु भूखा न जाय। उनका घर लूट का घर नहीं था। लुटेरों को ललचाने वाला घर नहीं था। उनका घर, घर के मर चुके अर्थ को जीवन प्रदान करने वाला, विकल्प का घर था।

कबीर की कविता बाजार के घर के मुकाबले अपने घर के विकल्प की कविता है। इसीलिए कबीर ललकारते हैं कि भाई हे! हमारे साथ चलना है, साथ-साथ चलना है तो बाजार का घर, घर के भ्रम का घर फूँक दो। अपना अन्धापन, अपना पिछलग्गूपन फूँक दो। कबीर किसी के भी पीछे चलने के पक्षधर नहीं थे। न लोक के ही, न वेद के ही। वे आगे-पीछे चलने की परम्परा के विरुद्ध थे। वे साथ-साथ चलने की परम्परा के प्रस्तावक कवि है- संगच्छध्वं, सवंदहवं-की परम्परा के प्रस्तावक कवि हैं। वे अनुगत और अनुगामी बनाने के विचार के पोषक नहीं, सहचर बनाने के विश्वासी हैं।

कबीर की कविता क्रान्ति की कविता है। वह अवास्तविक की अवास्तविकता का उद्घाटन करके उसका ध्वंस करती है। वह जीवन की वास्तविकता को उजागर करके उसे निर्मित करती है। कबीर की कविता जीवन की कविता है। जीवन के काम की कविता है। कबीर की कविता गाढ़े वक्त की थाती है। वह बाजार के काम की नहीं है। वह विज्ञापन के काम की नहीं है। वह लाभ कमाने के काम की नहीं है। कबीर की कविता किसी दुकान के विज्ञापन के अयोग्य कविता है। वह न हिन्दुत्व के दुकान के काम की है, न मुसलमानत्व की दुकान के काम की है। कबीर की कविता दुकानदारी की नहीं, समझदारी की कविता है। दुनिया जब-जब दुकानदारी से नाता तोड़कर समझदारी का दामन थामने को हाथ बढ़ायेगी, कबीर की कविता उसके स्वागत में उत्सुक खड़ी मिलेगी।

कबीर की कविता घर के श्रृंगार की कविता हैं। जो घर के लिए खुद ही घर है, वह घर का श्रृंगार नहीं कर सकता। जो घर के लिए चिन्तित है, वह घर की चिन्ता नहीं कर सकता। कबीर का घर चिन्ता का घर नहीं, चेत का घर है। चिन्ता का घर जलाकर ही चेत का घर पाया जाता है। चेतकर ही चैतन्य का घर पाया जाता है।

कबीर का घर, घर में रहने का घर है। वह आने-जाने का घर नहीं है। वह घर में स्थित हो जाने का घर है। स्थिर हो जाने का घर है। ठहर जाने का घर है। घर में स्थिर हो जाना ही गृहस्थ होना होता है। स्थिर हो जाने से आवागमन यानी आना-जाना मिट जाता है। कबीर उस घर के लिए चेत करने को कहते हैं, जिसमें आना-जाना नहीं होता। होता है, केवल रहना। कबीर का घर स्वार्थ का घर नहीं, सन्यास का घर है। कबीर ने अपनी कविता में घर को मन्दिर जैसी पवित्रता की मर्यादा देकर घर के अर्थबोध को जैसा विस्तार दिया है, वह स्तुत्य है। गृहस्थ का जो यशगान किया है, वह मनुष्यता के लिए कविता का अमूल्य उपहार है। कबीर अपनी कविता में जीवन की सम्पूर्णता के उपासक हैं। वे पूर्ण मनुष्य, परिपूर्ण मनुष्य के आकांक्षी कवि हैं। उनकी कविता मनुष्य की चेतना को पूर्णता की ओर उन्मुख करने वाली कविता है। वे न तो त्याग के उपासक हैं, न भोग के। वे त्यागपूर्ण भोग के उपासक है। उनका घर सबमें अपने को सम्मिलित कर देने को तत्पर और अपने में सबको समाहित कर लेने को उत्सुक घर है।

कबीर के साथ होने के लिए, कबीर की कविता के साथ होने के लिए बीच बाजार में खड़े कबीर की लुकाठी से हमें भी अपना घर फूँकना होगा। घर के भ्रम का घर फूँकना होगा। यह घर फूँककर ही उस घर का चेत किया जा सकता है, जो अपना भी है और सबका भी है। चेतना के धरातल पर अभेद का बोध ही कबीर के घर की पहचान है। कबीर का घर मनुष्य का घर है। मनुष्य के लिए घर है। मनुष्यता का घर है। मनुष्यता का घर किसी जाति का घर नहीं है। किसी धर्म का घर नहीं है। किसी राष्ट्र का घर नहीं है। यह सम्पूर्ण वसुधा का घर है।

वह सम्पूर्ण पृथ्वी पर पड़ोस के प्यार का प्रवर्तक घर है। वह वैश्विक घर है। कबीर की कविता का घर भारतीय चिन्तन की अनमोल धरोहर 'बसुधैव कुटुम्बकम' का अथक प्रवाचक घर है। काश, कबीर का घर हमारा भी घर हो पाता! काश, कबीर का घर हमारे समय का घर हो पाता! काश, कबीर की कविता हमारे प्राणों को स्पन्दित कर पाती! ❑

नेपाल के भारत विरोध की वजह सीमा विवाद नहीं, राष्ट्रवाद की सियासत है

❑ मुकेश कुमार सिंह

आखिर क्यों, सदियों से भारत से दोस्ताना संबंध रखने वाला नेपाल देखते ही देखते दुश्मनों जैसा व्यवहार करने लगा? मौजूदा दौर में जब चीन, पाकिस्तान और नेपाल तीनों हमें तेवर दिखा रहे हैं, तब नेपाल के रवैये को ही सबसे असहज माना जा रहा है. नेपाल के तल्ख तेवर हमारे राजनयिकों, हुक्मरानों और थिंक टैंक के भी गले नहीं उतर रहे. हालांकि, साफ दिख रहा है कि नेपाल की मौजूदा राजनीति भी उसी राष्ट्रवाद की राह पर है, जो भारत को कई सालों से मथ रहा है. भारत में जो पैमाना पाकिस्तान और मुसलमान को निशाना बनाने को लेकर है, नेपाली राजनीति में वही भारत और मधेसियों को लेकर है.

नेपाल का नस्लवाद

तीन करोड़ की आबादी वाले नेपाल में वैसे तो 'पहाड़ी' और 'मधेसी' के बीच नस्लवादी राजनीति का अतीत दशकों पुराना है, लेकिन 2008 में राजशाही के पतन के बाद से नेपाली नस्लवाद और गहराता चला गया है. पहाड़ी नेता अपनी राजनीति चमकाने के लिए मधेसियों को भारतीय घुसपैठिये की तरह पेश करते हैं. इन्हें वैसे ही भारतपरस्त बताया जाता है, जैसे भारतीय मुसलमानों पर पाकिस्तानपरस्ती का ठप्पा लगाया जाता है.

'राष्ट्रवाद' का बोलबाला

राजशाही के पतन के बाद नेपाल में हमेशा गठबंधन वाली सरकारें ही बनीं. इनके घटक दलों में हमेशा देशहित से ज्यादा पार्टी-हित की होड़ रही. सत्ता, संख्या बल से मिलती है. संख्या बल के लिए सभी पार्टियों की कोशिश रहती है कि वे ख़ुद को ज्यादा असली, मजबूत और बेखौफ पेश करके बताएं कि उनसे बड़ा नेपाल का हितैषी कोई और नहीं है. नेपालियों को भारत ने बहुत करीब से दिखाया है कि 'राष्ट्रवाद' से शानदार जुबानी मिसाइल और कुछ नहीं हो सकती.

नेपाल को भी जब राष्ट्रीय अस्मिता वाले मुद्दों की जरूरत पड़ने लगी तो उन्होंने सीमा-विवाद का हौवा खड़ा कर लिया. 8 मई को पिथौरागढ़ में धारचूला से लिपुलेख को जोड़ने वाली सड़क का उद्घाटन हुआ, और 20 मई को नेपाली प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली का सख्त बयान आया कि कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा हमारा इलाका है. भारत ने इस पर अवैध कब्ज़ा कर रखा है, इसलिए हम इसे वापस लेकर रहेंगे. हालांकि, इसी सड़क के शिलान्यास समारोह में ओली बतौर विदेश मंत्री शामिल हुए थे.

नेपाल का भारत विरोधी नैरेटिव

प्रधानमंत्री ओली सिर्फ बयान देकर खामोश नहीं रहे. उन्होंने 13 जून को देश के नये राजनीतिक मानचित्र को नेपाली संसद के निचले सदन की मंजूरी भी दिला दी. इससे पहले नेपाल में ये नैरेटिव बन चुका था कि जो भी ओली सरकार के खिलाफ चूं तक करता, उसे फौरन राष्ट्रद्रोही और भारत का एजेंट करार दे दिया जाता. हालांकि, नेपाल के इस नैरेटिव की एक और पृष्ठभूमि भी है.

2 नवंबर 2019 को भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय और भारतीय सर्वेक्षण विभाग ने मिलकर देश का नया राजनीतिक मानचित्र जारी किया था. इसमें कालापानी, लिम्पियाधुरा और लिपुलेख को भारतीय क्षेत्र बताया गया है. इसे लेकर नेपाल ने उस वक्त आपत्ति भी जतायी थी. लेकिन भारतीय विदेश मंत्रालय ने यह कहकर आपत्ति को खारिज कर दिया था कि 'नक्शे में नेपाल की सीमा में कोई बदलाव नहीं है. यह तो सिर्फ भारत के सम्प्रभु क्षेत्र को दर्शाता है.'

विदेश नीति की अदूरदर्शिता

तब विदेश मंत्रालय ने नेपाल की आपत्तियों को बातचीत से सुलझाने की

पेशकश नहीं की. इसलिए ओली सरकार ने इसे अपनी जनता के बीच भारत की हेकड़ी की तरह पेश किया, ताकि यह मुद्दा उनके राष्ट्रवादी एजेंडे में फिट बैठ सके. यही तेवर अब भारत-नेपाल सीमा विवाद के रूप में हमारे सामने है. फिलहाल, भारतपरस्त समझे जाने वाले मधेसी नेता और उनकी पार्टियां भी 'भारत विरोधी नेपाल' वाले नैरेटिव से हां में हां मिला रही हैं या फिर दबी जुबान में ही ओली सरकार का विरोध हो रहा है. क्योंकि इन्हें भी राजनीतिक भविष्य की चिन्ता है.

नेपाल को लेकर भारतीय विदेश नीति में 2014 के बाद से बड़ा बदलाव यह आया है कि भारत सरकार ने हिंदू बहुल नेपाल को अघोषित तौर पर अपने ही एक और प्रदेश का तरह देखना शुरू कर दिया. अप्रैल 2015 में नेपाल में आये भीषण भूकंप के वक्त भारत सरकार की मदद और राहत की बड़े सियासी इवेंट की तरह कवरेज की गयी. नेपालियों ने इसे अपने स्वाभिमान के खिलाफ देखा. यही सिलसिला भारतीय प्रधानमंत्री की सभी नेपाल यात्राओं में भी रहा. नेपालियों को लगा कि जैसे कोई दोस्ती निभाने नहीं, बल्कि दादागिरी दिखाने आया हो.

मधेसी आंदोलन की कीमत

अक्टूबर-नवंबर 2015 में मधेसियों के आन्दोलन के दौरान 'भारत विरोधी नेपाल' नैरेटिव गरमा गया. तब नेपाल के पहाड़ी इलाकों में ईंधन और जरूरी सामान की भारी किल्लत हो गयी, क्योंकि करीब दो महीने तक रक्सौल बॉर्डर बन्द रहा. भारत ने मधेसी आन्दोलन को नेपाल का आन्तरिक मामला कहा, लेकिन पहाड़ियों के वर्चस्व वाली नेपाल की राजनीतिक सत्ता ने इसे भारतीय मिलीभगत की तरह पेश किया. उन्हें अपनी संवैधानिक खामियों का ठीकरा भारत के सिर पर फोड़ने का मौका मिल गया. ओली ये दिखाने लगे कि उन्हें भारत की कोई परवाह नहीं है, क्योंकि वे जिस नेपाल के नेता हैं, वह स्वतंत्र राष्ट्र है. जैसे भारत में 'नया भारत' का नारा उछाला जाता है, वैसे ही वहाँ भी 'नया नेपाल' का नारा चल रहा है. इसे साबित करने के लिए ओली ने चीन से नजदीकी बढ़ा ली. जब नेपाल पर चीन का खिलौना बनने का आरोप लगने लगा तो गरीब नेपाल में नया राष्ट्रवादी नैरेटिव यह पैदा हुआ कि नेपाल किसी से डरता नहीं, किसी के दबाब में आकर फैसले नहीं लेता. नेपाली 'सिर कटा सकता है लेकिन झुका नहीं सकता'. इस नैरेटिव की मांग थी कि जो नेपाली नेता, भारत को जितना धिक्कारेगा, उसकी राजनीति उतनी ज्यादा चमकेगी.

आग में घी बने अनावश्यक बयान

दुर्भाग्यवश, भारतीय विदेश नीति ऐसे तमाम नैरेटिव से अंजान बनी रही. भारतीय नेताओं ने नेपाल की चीन से बढ़ती नजदीकी पर जितने कटाक्ष किये, नेपाली नेताओं को भारत विरोधी तेवर दिखाने का उतना ज्यादा मौका मिला. मसलन, हाल ही में भारतीय थल सेनाध्यक्ष का यह कहना कि 'हमें मालूम है कि नेपाल किसके इशारे पर चल रहा है।' या फिर योगी आदित्यनाथ का वह बयान, जिसमें वे तिब्बत का उदाहरण देकर नेपाल को चीन से सावधान रहने की बात करते हैं. जबकि कूटनीतिक परम्पराओं के लिहाज से जनरल नरवणे और मुख्यमंत्री योगी को ऐसे बयानों से परहेज करना चाहिए था. इसने नेपाल के भारत विरोधी नैरेटिव को और हवा ही दी.

दरअसल, 'नया नेपाल' के लोग भारत पर अपनी निर्भरता को अपनी बेड़ियां नहीं समझना चाहते. जो प्रधानमंत्री ओली आज भारत विरोध का सबसे बड़ा चेहरा हैं, कभी उनकी छवि भारत समर्थक वाली थी. उन्होंने 1996 में नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर अपनी पार्टी इसीलिए बनायी, क्योंकि वे भारत और नेपाल के बीच महाकाली नदी जल समझौते के पक्ष में थे, जबकि उनके साथी नेता उसके पक्ष में नहीं थे. यह वही नदी है, जिसके पूर्वी तट को भारत, 1816 की सुगौली सन्धि के मुताबिक, नेपाल की सीमा बताता है और जिसके पश्चिमी तट पर कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा वाले इलाके हैं.

ओली कैसे बने भारत विरोधी चेहरा?

सवाल यह भी है कि ऐसा क्या हुआ कि कभी भारत समर्थक रहे ओली, अब जबरदस्त भारत विरोधी चेहरा बन चुके हैं? ओली का भारत विरोधी रुख 2015 में तब शुरू हुआ, जब नेपाल में संविधान निर्माण के दौरान मधेसियों के आन्दोलन के बीच प्रधानमंत्री पद की दौड़ में ऐन वक्त पर सुशील कोइराला के खिलाफ ओली ने ताल ठोंक दी थी. चुनाव में भारत समर्थित छवि वाले कोइराला को ओली ने हरा दिया. यहीं से नेपाल में राष्ट्रवाद का जो नया नैरेटिव पैदा हुआ, उसके चलते ओली का मन भारत के प्रति बदल गया. देखते ही देखते 'भारत-विरोध', नेपाल की राजनीति की धुरी बन गया.

भूकंप की त्रासदी और भारत की सीमाएं बन्द होने की वजह से नेपाल ने जो दुश्वारियां झेलीं, उससे भारत विरोधी तेवर ही नेपालियों की राजनीतिक मजबूरी बन गया. अब नेपाल की हरेक आंतरिक समस्या के लिए भारत को वैसे ही कोसने की राजनीति फल-फूल रही है, जैसे भारत में सरकार की हर नाकामी के पीछे पाकिस्तान का हाथ बताया जाता है. इसलिए 2016 में भारतीय हितों की अनदेखी करके चीन से शुष्क बन्दरगाहों, रेल लिंक और बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव वाले समझौते करने में ओली को कोई दिक्कत नहीं हुई.

ओली के कट्टर तेवर

साल 2017 में ओली के सामने प्रचंड यानी पुष्प कमल दहल के धड़े की बगावत खड़ी हो गयी. ओली ने इसे 'भारत के इशारे पर' हुई बगावत की तरह पेश किया. इससे नेपाल का भारत विरोधी छद्म राष्ट्रवाद परवान चढ़ा और ओली को जीत मिली. इसलिए सियासी जरूरतों की खातिर अब ओली अपनी कट्टर भारत विरोधी छवि के साथ डटे हुए हैं. ओली की राजनीति को वक्त रहते नहीं भांप पाने का नतीजा यह रहा कि नेपाल पर चीन की पकड़ मजबूत होती चली गयी और भारत का एक पुराना मित्र राष्ट्र इससे बहुत दूर जा निकला.

ताजा सीमा विवाद भले ही नेपाल के लिए नुकसानदायक साबित हो, लेकिन सत्ता की खातिर देश-हित का सौदा करने वाले ओली कोई अकेले राजनेता नहीं हैं. छद्म राष्ट्रवाद की आग में झुलस रहे दर्जनों देशों में यही हो रहा है. इसलिए, आपसी विवाद को बातचीत से हल करने की हर कोशिश आगामी दशकों तक बेनतीजा ही साबित होती रहेगी.

नेपाली पार्टियों की राजनीति 'भारत विरोध' की आग को बुझाने से नहीं, बल्कि और धधकाने से ही चमकेगी. अब नेपाल की जो पार्टी भारत के खिलाफ जितना जहर उगलेगी, उसे उतना ही अधिक जनसमर्थन मिलेगा, ऐसा लगता है.

-द क्विंट

कोरोना के बाद

लौटकर शायद न वो पिछला ज़माना आएगा!

❑ ध्रुव गुप्त

पिछली सदी के दो विनाशक महायुद्धों ने हमारी दुनिया की राजनीति और अर्थव्यवस्था को बहुत हद तक बदला था। विश्व इतिहास में पहली बार कुछ ऐसा हो रहा है, जो राजनीति और अर्थतन्त्र के साथ लोगों का जीवन और जीने के तरीके भी बदलने जा रहा है। महामारियां पहले भी आती रही हैं, लेकिन उनके प्रभाव-क्षेत्र सीमित होते थे और उनके गुज़र जाने के बाद जीवन फिर से सामान्य हो जाया करता था। कोरोना की वैश्विक महामारी कुछ अलग ही चीज है। कुछ ही अरसे में इसने समूची दुनिया को घेर कर उसकी तस्वीर ही बदल दी है। विश्व की ज्यादातर आबादी घोषित-अघोषित लॉकडाउन अथवा अस्पतालों के आइसोलेशन वार्ड में है। संक्रमण के भय से लोग चेहरे पर मास्क लगाकर एक दूसरे से छुपते फिर रहे हैं। सैनिटाइजर और साबुन से हाथ मलते रहना समय का नया कर्मकांड है। इस वायरस के इलाज की आतुर प्रतीक्षा में पूरी दुनिया अपने-अपने दड़बे में सिमटी बेचैन और हलकान है।

पिछले छह-सात महीनों में इस वायरस से पूरी दुनिया में लाखों लोगों की मौत के बाद भी इसकी उत्पत्ति और इलाज को लेकर विज्ञान अंधेरे में है। इसकी वैक्सीन की खोज युद्धस्तर पर जारी है, लेकिन जिस तरह से कोरोना निरंतर अपना जेनेटिक्स, शक्ल और लक्षण बदल रहा है, उससे खुद वैज्ञानिक भी हैरान हैं। कहना न होगा कि दशकों बाद भी एड्स और सार्स सहित कई-कई महामारियों के वैक्सीन आज तक नहीं मिल पाए हैं। शायद कोरोना का भी न मिले। सबसे आशावादी अनुमान के अनुसार ऐसी कोई वैक्सीन अगर बनी भी तो डेढ़-दो साल के पहले नहीं बन पाएगी। फिर उसके व्यावसायिक उत्पादन, वितरण और दुनिया के अरबों लोगों तक उसके पहुंचने में कई और बरस लगेंगे। तबतक शायद दुनिया बदल चुकी होगी। दुनिया में लोगों के जीने की आदतें भी बदल चुकी होंगी। पिछले कुछ दशकों में जिस रफ्तार से वातावरण में नए-नए वायरस का प्रवेश हो रहा है, उससे यह लगने लगा है कि अब कोरोना रहे या जाए, हमारी दुनिया पहले जैसी नहीं रहेगी।

कोरोना काल में संभावित राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के बारे में दुनिया भर में विमर्श ज़ारी है। हम आम लोग इतना ही समझते हैं कि राजनीतिक रूप से इस महामारी में लोगों के जीवन में सत्ता का हस्तक्षेप बढ़ेगा, उनके प्रतिरोध तथा प्रदर्शन के अधिकार पर सरकारों का नियंत्रण होगा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कई अवधारणाएं बदलेंगी। शुरू में तो यह लोगों की भलाई के लिए होगा, लेकिन कालांतर में यह सत्ता का चरित्र भी बन जा सकता है। महामारी के आर्थिक नतीजे होंगे आर्थिक विकास की पिछड़ी रफ्तार, उत्पादन में कमी, वैश्विक मंदी, कर्मचारियों की छंटनी, पर्यटन, होटल और सिनेमा जैसे उद्योगों की बर्बादी, युवाओं की बेरोजगारी में बेहिसाब वृद्धि और ऑनलाइन मार्केटिंग के फैलते जाल के दबाव में देश के छोटे दुकानदारों की रोजी-रोटी पर संकट। ये बाहरी संकट हैं, जिनसे निकलने के रास्ते दुनिया देर-सबेर खोज ही लेगी। आने वाले दिनों में उद्योग और व्यवसाय की नई-नई शैलियां और मार्केटिंग तकनीकें विकसित होंगी और उपभोक्ताओं की रुचियां भी बदलेंगी। हम यहां कोरोना की वजह से आने वाले सामाजिक और व्यक्तिगत बदलावों की बात कर रहे हैं।

हमारे जीवन से अब लंबे वक्त के लिए उत्सवधर्मिता गायब रहने वाली है। राजनीतिक रैलियां ही नहीं, तमाम धार्मिक जुलूस और सांस्कृतिक आयोजन भी बंद रहेंगे। अपने कमरे में नाच-गा-बजा सकें तो ठीक, वरना सामूहिक तौर पर ऐसा अरसे तक मुमकिन नहीं होने जा रहा है। सिनेमा और रंगमंच के लंबे समय तक खुलने की उम्मीद नहीं है। कवि-सम्मेलन, सेमिनार, गोष्ठियां और यहां तक कि सियासी रैलियां भी अब ऑनलाइन हुआ करेंगी। मंदिरों-मस्जिदों-चर्च-गुरुद्वारों और होटलों में मास्क और फिजिकलल डिस्टेंसिंग के अलावा ढेर सारा डर भी साथ होगा। शादी-ब्याह के आयोजन बेजान और फीके होंगे। मैदानों में खेल के भीड़ भरे आयोजन और घर बैठे क्रिकेट, हॉकी और फुटबॉल मैचों की रोमांचक रनिंग कमेंट्री अब देखने-सुनने को जाने कब मिले। दुकानें खुलेंगी, लेकिन बाजार की रौनकें गायब होंगी। ख़रीदारी के मज़े जाते रहेंगे। मोलभाव की अपनी प्रिय जगह सब्जी बाजार और फुटपाथी मार्केट की भीड़ में संक्रमण के डर से लोगों को मोलभाव के मौके अब शायद ही मिलें। हमारा देश भीड़ का आदी रहा है। कुछ न हुआ तो बीच सड़क पर ही दस लोगों को जमा कर हंस-बोल, गा-बजा लिया। अकेले और अलग रहने की कला हमें सीखनी पड़ रही है। दुनिया भर के मनोवैज्ञानिक यह दिलासा दे रहे हैं कि यह वायरस सामाजिकता के हमारे मूल स्वभाव को नहीं बदल पाएगा। यह संकट दूर होने के बाद लोगों को सामाजिक जुड़ाव की ज़रूरत पहले से ज्यादा महसूस होगी। हालांकि कुछ विचारक यह आशंका भी प्रकट कर रहे हैं कि वर्षों तक वैयक्तिकता और असामाजिकता निभाने का अभ्यास तथा मजबूरी हमें समाज से काटकर हमेशा के लिए एकांतप्रिय भी कर दे सकती है।

इस नई दुनिया में जिन लोगों का जीवन पूरी तरह से बदल जाने वाला है, उनमें 60-65 साल से ऊपर के बुजुर्ग सबसे पहले हैं। उनमें प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है और जीवन के इस दौर में वे किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त भी होते हैं। कोरोना संक्रमण से होने वाली मौतों में इस उम्र-वर्ग के लोगों की हिस्सेदारी अस्सी प्रतिशत से अधिक है। उनके लिए घरों से निकलना मना है और सामाजिकता के तमाम रास्ते बंद हैं। न वे हमउम्रों के साथ टोली बनाकर जीवन के अपने अनुभव साझा कर सकेंगे और न सुख-दुख। सुबह पार्कों के दरवाजे भी उनके लिए बंद मिलेंगे। सुबह-शाम झोला लेकर दूध और सब्जी के बहाने बाजार

का एक चक्कर घर के लोग उन्हें लगाने नहीं देंगे। उन वृद्धजनों की ज़िंदगी शायद थोड़ी आसान होगी, जिनकी पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी अथवा कुछ रचने में रुचि है। इस उम्र के बाकी लोगों को अब जीवन के नए अर्थ और जीने के अलग सलीके खोजने होंगे। जो वृद्धजन ऐसा नहीं कर पाएंगे, वे बैठे-बैठे घर-परिवार के कामों में अनावश्यक हस्तक्षेप करेंगे, युवाओं और बच्चों के आगे उपदेशों और अपने अप्रासंगिक हो चुके जीवन-मूल्यों की गठरी खोलेंगे और धीरे-धीरे अपने परिवार के लिए भावनात्मक तौर पर बोझ बनते चले जाएंगे।

कार्यालयों और व्यावसायिक स्थलों में कार्यरत लोगों के तमाम कार्य-स्थल लगभग खुल गए हैं। उनके प्रोफेशनल तौर तरीके अब पहले जैसे नहीं रहे। उनकी दिनचर्या में अब दफ्तर, कुर्सी-मेज, फाइल, कंप्यूटर, मोबाइल, बॉस, शोरूम, ग्राहकों और सहकर्मियों के अलावा फिजिकल डिस्टेंसिंग, मास्क, सेनेटाइजर और बहुत सारे भय भी शामिल रहेंगे। इसके पहले लोगों ने अपनी कार्यशैली में एक बड़ा बदलाव तब देखा था, जब दफ्तरों में मोबाइल, कंप्यूटर और इंटरनेट का प्रवेश हुआ था। उस बदलाव में लंबा वक्त लगा था। अभी का बदलाव महज चंद दिनों में करने की मजबूरी है। छोटे व्यवसायी, किसान और मज़दूर भी बदली स्थितियों के साथ तालमेल बिठाकर काम करने की आदत डाल रहे हैं। कुछ ही अरसे में तमाम शर्तों और दिशानिर्देशों के साथ देश के कॉलेज और स्कूल भी खुलेंगे। यह और बात है कि शिक्षण संस्थाओं की रौनक सिरे से गायब होगी। न वह शोर-शराबा होगा, न वैसे गुलज़ार प्रांगण, न भीड़ भरे कॉमन रूम और न खेल के मैदान, न दोस्तों से दौड़कर गले मिलने और लपककर हाथ मिलाने के अवसर। इस बदले माहौल का युवाओं के दिलोदिमाग़ पर होने वाले मनोवैज्ञानिक असर से भविष्य की दुनिया का चेहरा कैसा बनेगा, इसकी पड़ताल के नतीजे दिलचस्प होंगे।

कोरोना काल में बच्चों का जीवन सबसे कठिन हो चला है। उनका बचपन उनसे छिन रहा है। महीनों से घर के बाहर वे निकल नहीं पा रहे हैं। उनके हमउम्र दोस्त उनके लिए पराये और अछूत हो चले हैं। खेलते-कूदते बच्चों के शोर के बगैर शहरों की गलियां और गांवों के रास्ते सूने हैं। उनके स्कूल महीनों से बंद हैं। अगले कुछ महीनों में उन्हें फिर से खोलने की चर्चा तो हो रही है, लेकिन देश में जिस तरह का कोरोना विस्फोट देखने में आ रहा है, उसमें यह संभावना नहीं के बराबर है। सरकार बच्चों के जीवन से खेलने का कोई खतरा शायद ही मोल ले। किसी दबाव में अगर सरकार ने मास्क, फिजिकल डिस्टेंसिंग और सैनिटाइजर की शर्तों के साथ बच्चों के स्कूल खोल भी दिए, तो उनके माता-पिता उन्हें शायद ही स्कूल भेजना चाहेंगे।

कुछ यूरोपीय देशों ने कुछ शर्तों के साथ बच्चों के स्कूल खोल दिये हैं। उनके लिए क्लास रूम में छह-छह फीट की दूरी पर डेस्क लगाए जा रहे हैं। अपने देश में स्कूलों में बच्चों की भीड़ और जगह की कमी के मद्देनजर ऐसा करना संभव नहीं होगा। फिर बच्चों को मास्क पहनाना क्या इतना सहज है? टीचर के क्लास से बाहर निकलते या छुट्टी की घंटी बजते ही वे मास्क नोच कर फेंक देंगे। स्कूल में खेल के मैदान बंद हुए तो वे क्लास को ही खेल का मैदान बना डालेंगे। फिलहाल ऑनलाइन क्लासेज को स्कूली शिक्षा का विकल्प बताया जा रहा है, लेकिन इससे बच्चों के व्यक्तित्व और मानस का एकहरा विकास ही संभव है। उन्हें घर के प्यार और किताबी शिक्षा के साथ शिक्षकों की फटकार भी चाहिए, दोस्तों के साथ प्यार और लड़ाई-झगड़े भी, खेल के मैदान भी और गलियों की धूल-मिट्टी भी। दुनिया के बंधन-मुक्त होने तक अपने उन्मुक्त संसार और जाने-पहचाने रूटीन से कटे हमारे बच्चे शायद अकेले, उदास और असामाजिक हो चुके होंगे।

सामाजिक अलगाव के इस समय में हमारी दुनिया में और भी बहुत कुछ बदलने वाला है। परंपरागत सोच से अलग घरों में रहने वाले लोग अब समझदार और सामाजिकता निभाने वाले मूर्ख कहे जाएंगे। पहले घरों से ऊबे हुए लोग बोरियत मिटाने के लिए बाहर भागते थे, अब बाहर से डरे हुए लोग सुरक्षा की तलाश में घरों की ओर दौड़ेंगे। किसी भी परिवार में मेहमान अब देव-तुल्य नहीं, अवांछित होंगे। युवाओं के प्रेम करने के तरीके बदलेंगे। प्रेमी जोड़े मास्क डालकर एक दूसरे से मिल तो लेंगे, लेकिन उनके बीच में दो गज का फासला भी होगा। प्रेम की याचना में निकले लोगों को कोरोना नेगेटिव होने की मेडिकल रिपोर्ट जेब में रखनी होगी। प्रेमी जोड़ों को शहर के पार्कों में अनुशासित करने के लिए अब लाठीधारी गार्डों की जरूरत नहीं होगी। संक्रमण का डर ही उन्हें अनुशासित करके रखेगा। सिनेमा, थिएटर और सांगीतिक आयोजन जैसे मनोरंजन के सामुदायिक मंचों के अभाव में टेलीविजन, मोबाइल और इंटरनेट पर लोगों की निर्भरता बढ़ेगी। विदेश घूमकर आना अब प्रतिष्ठा की नहीं, मुंह छुपाने की बात होगी। सामुदायिकता के जाने के साथ देश-दुनिया में अवसाद से भरे लोगों की संख्या में बेतहाशा इजाफा होगा। सड़कों पर गिरे हुओं को सहारा देने के पहले लोग सौ बार सोचेंगे। रोगियों की सेवा की हमारी युगों पुरानी परंपरा टूटेगी। लोग कोरोना के संदेह में सामान्य मरीजों को भी देखकर दूर भागेंगे। दुर्भाग्य से कोरोना से कोई मरा, तो उसकी लाश को कंधा देने के लिए भाड़े के लोगों की तलाश करनी पड़ेगी।

जानलेवा वायरसों के इस दौर में जीवन बदलेगा, जीवन जीने का सलीका भी बदलेगा और सामाजिकता निभाने के तौर-तरीके भी। जिसे हम आज सामान्य जीवन कहते हैं, वह अब शायद इतिहास की वस्तु हो जाय। कोरोना के समय में नीति-शास्त्र का नवीनतम सूत्र वाक्य यह है कि हमें कोरोना के साथ जीना होगा। वैसे जीने में आज की पीढ़ी को मुश्किलें तो आएंगी, लेकिन जीवन रुकता कहां है ? मौत के समुद्र में भी मनुष्य अपने लिए द्वीपों की तलाश कर लेता है। परिस्थितियों के अनुरूप खुद को ढाल भी लेता है। अब भविष्य में जैसा हमारा जीवन होने वाला है, उसके लिए सामान्य से अलग कोई दूसरा शब्द खोजना होगा। फिलहाल लोग इसे 'न्यू नार्मल' कहने लगे है। इस न्यू नार्मल को आज हम असामान्य कह दे सकते हैं, लेकिन आने वाले समय में लोगों को शायद ऐसा ही जीवन सामान्य लगने लगे। यह भी संभव है कि वे मुड़कर पीछे देखें और यह सोचकर मुस्कुरा दें कि अभी कुछ ही बरसों पहले हमारा जीवन कैसा बेढब और बेतरतीब हुआ करता था। ❑

कोयला खदानों की नीलामी
राष्ट्रीय संपदा के केन्द्रीकरण की कोशिश!

❑ सत्यम श्रीवास्तव

11 जून 2020 को देश के कोयला मंत्री प्रहलाद जोशी ने एक ट्वीट के माध्यम से यह जानकारी दी कि '18 जून 2020 को देश में पहली बार, अपनी तरह की पहली वाणिज्यिक कोयला नीलामी का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी मौजूद रहेंगे'। इसी ट्वीट में उन्होंने यह भी बताया कि 'यह नीलामी देश के प्रधानमंत्री के मार्गदर्शन में कोयले के क्षेत्र में 'आत्मनिर्भर भारत' बनाने की दिशा में उम्मीद की एक नयी किरण होगी'। उनके इसी ट्वीट में एक प्रचारनुमा पोस्टर भी चस्पा है, जिसमें अंग्रेजी में लिखा है- अनलीजिंग कोल- न्यू होप फॉर आत्मनिर्भर भारत। हालांकि इस ट्वीट से केवल किसी आयोजन की खबर मिलती है। उसका ब्यौरा पीआईबी (पत्र सूचना कार्यालय) के सौजन्य से छपी खबर में दिया गया है। इसमें पूरी तफसील व इतमीनान से इस नीलामी की ऐतिहासिकता और इसमें निहित रोमांच के ब्यौरे मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं-

ऐतिहासिक बताई जा रही नीलामी प्रक्रिया की आकर्षण- पीआईबी की विज्ञप्ति में बताया गया है कि यह नीलामी इसलिए ऐतिहासिक कही जा रही है, क्योंकि इसके माध्यम से 'देश का कोयला क्षेत्र, बाधाओं की बेड़ियों से मुक्त होगा और प्रगति के नए अध्याय रचेगा'। 'जब से स्वनदर्शी और निर्णायक छवि के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'आत्मनिर्भर भारत' का उद्घोष किया है, तब से देश के कोयला क्षेत्र ने भी संरचनात्मक सुधारों के माध्यम से बड़े अभियान के लिए अपनी कमर कस ली है'।

अब सवाल है कि इस नीलामी प्रक्रिया को किसी उत्सव की तरह क्यों मनाया या पेश किया जा रहा है? पहले भी तो कोयला खदानों की नीलामियां होती आयी हैं? इसके जवाब में बताया जा रहा है कि यह पहले की सरकारों में आयोजित हुई नीलामियों की तुलना में बिलकुल अलग होगी।

कैसे? इस सहज प्रश्न का जबाव भी इस विज्ञप्ति में दिया गया है कि 'पहले की सरकारें इस क्षेत्र को बहुत बांध कर रखती थीं, उनका अंतिम उपयोग और कीमतें बहुत संकीर्ण थीं। अब ऐसे कोई प्रतिबंध नहीं होंगे। इस प्रस्तावित नीलामी में जो शर्तें लागू की जा रही हैं, वे बहुत लचीली हैं ताकि नयी कंपनियां भी इस नीलामी में भागीदारी कर सकें। नीलामी के समय जमा होने वाली राशि को घटाया गया है, साथ ही रॉयल्टी के एवज में पेशगी की राशि का एडजस्टमेंट किया जाएगा। कार्य क्षमताओं के पैमानों को उदार बनाया गया है, ताकि कोयला खदान के संचालन में लचीलेपन को प्रोत्साहित किया जा सके। नीलामी की प्रक्रिया पारदर्शी होगी।

नेशनल कोल इंडेक्स के आधार पर ऑटोमैटिक रूट और रीजनेबल वित्तीय शर्तों व राजस्व साझेदारी मॉडल के माध्यम से 100% विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को मंजूरी होगी। नीलामी में बोली लगाने वाली जिन कंपनियों को कोयला खदानें आवंटित होती हैं, उन्हें कोयले के उत्पादन में लचीलापन दिया जाएगा और अगर वे कोयले का उत्पादन और उसका गैसीफिकेशन जल्दी शुरू कर पाती हैं, तो उन्हें प्रोत्साहन देने के प्रावधान भी हैं। पिछली सरकारों में ऐसा कतई नहीं था।

यह नीलामी प्रक्रिया आत्मनिर्भर भारत के महान स्वप्न को पूरा करने के लिए नई उम्मीद कैसे है? इसके जवाब में पीआईबी की विज्ञप्ति में लिखा है कि कोयला खदानों की इस नीलामी प्रक्रिया से देश में ऊर्जा सुरक्षा की मजबूत नींव रखी जाएगी। अतिरिक्त कोयला उत्पादन से बड़े पैमाने पर रोजगार पैदा होंगे और कोयला क्षेत्र में व्यापक निवेश होगा। इन प्रयासों से 1 बिलियन टन का कोयला उत्पादन होगा, जिससे 2023-24 में अनुमानित घरेलू थर्मल कोल की आवश्यकता को पूरा किया जाएगा।

बेहद आकर्षक और बाज़ार के किसी दूसरे उत्पाद की बिक्री बढ़ाने जैसे इस सस्ते विज्ञापन से कई सवाल पैदा होते हैं, जिनके उत्तर सरकार को देने चाहिए। मसलन एक बुनियादी सवाल है कि अपने देश की प्राकृतिक संपदा और धरोहर को बेचकर कोई देश कैसे आत्मनिर्भर बनेगा? इसका कोई तर्क हमें नहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसी से जुड़ा सवाल यह भी है कि इस सेक्टर में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी देने से किसका राजस्व बढ़ेगा? विदेशी निवेश से भारत की आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को पाने की अविवेकी ललक कोई संप्रभु सरकार कैसे पाल सकती है?

कमर्शियल कोल माइनिंग यानी कोयले का वाणिज्यिक इस्तेमाल- हालांकि भाजपा सरकार ने सत्ता में आते ही कोयला अध्यादेश के मार्फत कोयले को वाणिज्यिक इस्तेमाल के लिए खोल दिया था, लेकिन तब भी इसके लिए सरकारी कंपनियों को ही योग्य माना गया था। अब कोयले के वाणिज्यिक इस्तेमाल और दोहन की छूट निजी उद्यमियों और कंपनियों को भी दी जा रही है, जिससे कोयले पर राष्ट्रीयकरण के संरक्षणवाद की नीति का जो अंकुश था, वह पूरी तरह से खारिज हो गया है और बाज़ार के अन्य उत्पादों की तरह खरीद –बिक्री के लिए उसे एक माल की तरह बना दिया गया है।

कोल का उन्मुक्तीकरण और बंधनों से मुक्ति का मतलब- हिंदुस्तान के इतिहास में अभी तक कोयले का उत्पादन केवल देश की ऊर्जा जरूरतों की पूर्ति के लिए ही किया जाता रहा है, इसलिए इसका अंतिम उपयोग अनिवार्यतः बिजली संयंत्रों, इस्पात बनाने या अन्य किसी उद्योग के लिए ऊर्जा की ज़रूरत को मद्देनजर रखते ही सीमित किया गया था ताकि कोयले का अपना कोई स्वतंत्र बाज़ार न हो। कोयले को केवल एक सहायक उत्पाद के तौर पर देखा गया था। अगर ऐसा नहीं होता और कोयले का ही व्यावसायिक उपयोग इन बीते 70 वर्षों में किया जाता, यानी कोई भी

कोयला निकालकर उसे कहीं भी बेचने के लिए स्वतंत्र होता, तो हमारे देश के उद्योगों के लिए ज़रूरी कोयले की आपूर्ति मुश्किल हो जाती या इन उद्योगों में निर्मित होने वाले उत्पादों की कीमतें बहुत ज्यादा होतीं।

कोयले को अंतिम उत्पाद के रूप में देखने और उसके व्यावसायिक उपयोग के लिए मुक्त कर देने से भले ही इस नीलामी में कुछ खरीदार आकर्षित होंगे, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम ज़रूरी उत्पादों के निर्माण की लागत बढ़ने में होगा, जो न तो देश हित में है और न ही इससे आत्म-निर्भर भारत बनाने का लक्ष्य ही पूरा होगा।

नीलामी की शर्तों में लचीलापन- खबर है कि अब इस नीलामी को सफल बनाने की मंशा से इसे कम प्रतिस्पर्द्धी बनाया गया है, यानी जहां कम से कम तीन या चार बोलीदारों का होना अनिवार्य था, अब महज़ दो बोलीदार होने से भी नीलामी की प्रक्रिया को संचालित किया जा सकेगा। उल्लेखनीय है कि मोदी के नेतृत्व में भाजपानीत सरकार ने अपने पहले कार्यकाल में भी इसी तरह की नीलामियां की थीं, जिन्हें घनघोर रूप से असफल माना गया था। पिछले कार्यकाल में इस सरकार ने 65 कोल ब्लॉक्स के लिए 72 बार नीलामी के प्रयास किए, जिनमें महज़ 31 खदानों को ही आवंटित किया जा सका।

फरवरी 2015 से लेकर जुलाई 2017 तक कुल पाँच चरणों में संचालित नीलामी प्रक्रियाओं में अंतिम दो प्रयासों को निरस्त ही करना पड़ा, क्योंकि बोली लगाने वाली योग्य कंपनियां सामने नहीं आयीं। बाद में 2018 में भी कुल 8 चरणों में नीलामी प्रक्रिया संचालित की गयी, जिसमें अंतिम पाँच चरणों की प्रक्रिया निरस्त करनी पड़ी, क्योंकि कोई खरीदार ही नहीं आया। गौरतलब है कि 2017 तक अपनाई गयी नीलामी प्रक्रिया में कम से कम 3 बोलीदारों की अनिवार्यता थी, एक ही निजी समूह कई-कई कंपनियों के नाम से बोली लगाने के प्रयास कर रहा था, जिसके बारे में भारत के महालेखा नियंत्रक ने 2017 की अपनी रिपोर्ट में दर्ज़ किया था।

इन तजुर्बों को ध्यान में रखकर नीलामी प्रक्रिया में लचीलापन बरतने की बात की जा रही है, लेकिन इस लचीलेपन की इंतिहां क्या होगी? ऐसा लग सकता है कि इस बहाने यह सरकार कोयले की आपूर्ति सुनिश्चित करने जा रही है, लेकिन जब देश में कोयले की मांग या खपत ही नहीं होगी, तो इसका सकारात्मक प्रभाव क्या होगा?

इसमें भी खदान लेने वाली कंपनी की कार्यक्षमता में ढील दी जा रही है, जिसका सीधा तात्पर्य यह है कि कोयला खदानें ले लेने के बाद भी कोयले का उत्खनन कब और कैसे करना है, इस पर कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। यानी आपूर्ति को लेकर भी कोई स्पष्ट नीति नहीं है। अर्थव्यवस्था की डूबती नैया को पार लगाने के लिए जो फौरी राजस्व वृद्धि की दरकार है, वह इस नीलामी प्रक्रिया से हासिल होने वाली नहीं है।

संघीय ढांचे पर आघात- जो सबसे बड़े सवाल इस प्रक्रिया पर उठ रहे हैं, वे देश की प्राकृतिक संपदा में संघीय सरकार के अलावा दो अन्य सरकारों यानी विभिन्न राज्यों की सरकारों व स्थानीय सरकारों की भूमिका को खारिज किये जाने को लेकर हैं। इससे देश की राष्ट्रीय संपदा को लेकर संघीय ढांचे की परिकल्पना पर बहुत गहरा आघात किया जा रहा है। अपने छह साल के कार्यकाल में भाजपा सरकार ने कई ऐसे कदम उठाए हैं, जिनमें राज्यों की स्वायत्तता व उनको प्रदत्त शक्तियों को नज़रअंदाज़ किया गया है। हाल ही में कोरोना से निपटने की रणनीति में हमने देखा है कि सब कुछ एक व्यक्ति के अधीन कर दिया गया। आज पूरा देश इस जिद के परिणाम भुगत रहा है।

पहले की सरकारों में राज्यों के पास ये अधिकार थे कि वे अपने भौगोलिक क्षेत्र में मौजूद खदानों पर निर्णय ले सकते थे, जिसके बारे में सुप्रीम कोर्ट ने 2014 के अपने आदेश में स्पष्ट रूप से कहा है, 'खदान आवंटन की मूल ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों की है'। इसके अलावा ग्रामसभाओं की भूमिका को लेकर भी बड़े सांवैधानिक सवाल हैं, जिन्हें पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में पेसा कानून व शेष भारत में वन अधिकार मान्यता कानून 2006 के माध्यम से प्रकृतिक संसाधनों पर स्वामित्व जताने के लिए विधि का बल प्राप्त है। उल्लेखनीय है कि ग्रामसभाएं 2015 से ही प्रधानमंत्री को इस आशय के पत्र लिख रही हैं कि उनके अधीन आने वाले कोल ब्लॉक्स की नीलामी न की जाये, क्योंकि वे इन्हें सहमति नहीं देंगीं।

यह प्रत्यक्ष तौर पर राज्यों की शक्तियों की उपेक्षा है, जिससे राज्य सरकारों के राजस्व में व्यापक कटौती होगी। ग्रामसभाओं की संविधान प्रदत्त भूमिकाओं की उपेक्षा होगी। गौरतलब है कि इस नीलामी के विरोध में झारखंड की सरकार ने अपनी मंशा ज़ाहिर कर दी है। हेमंत सोरेन ने पत्र लिखकर इस पर विरोध जताया है। संभव है कि कुछ और राज्य सरकारें भी इस तरह के कदम उठाएँ।

संपदा व शक्तियों के केन्द्रीकरण की कोशिश- हमें याद रखना चाहिए कि इसी तरह के एक दुराग्रहपूर्ण केन्द्रीकरण की कोशिश वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के थोपे जाने से भी हुई थी, जिसके परिणाम महज़ तीन साल बाद देश की अर्थव्यवस्था को भुगतने पड़ रहे हैं। ऐसा ही लोक लुभावन कार्यक्रम उस समय भी किया गया था और कर-सुधार की एक मामूली सी घटना को देश की आज़ादी की तरह मनाया गया था। 30 जून 2017 को संसद का विशेष सत्र अर्धरात्रि को बुलाया गया था, जो देश के इतिहास में चौथी बार हो रहा था। इससे पहले तीन बार ऐसा आयोजन हुआ था, जो क्रमशः 15 अगस्त 1947, 15 अगस्त 1972 और 15 अगस्त 1997 को आज़ादी के दिन, आज़ादी की पचीसवीं वर्षगांठ पर और आज़ादी की पचासवीं वर्षगांठ पर आयोजित किया गया था।

आज जीएसटी की असफलता के पीछे केन्द्रीकरण की यही दुराग्रही नीति है। तमाम राज्य सरकारें कर-संग्रहण की शक्तियों से विहीन होकर केंद्र सरकार की मोहताज हो गयी हैं। इसका सीधा प्रभाव यह हुआ है कि विभिन्न राज्यों के नागरिकों को बुनियादी जरूरतों की कमी से जूझना पड़ रहा है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रीय हित राज्यों को शक्तिविहीन और स्थानीय सरकारों को खारिज करके नहीं साधे जा सकते। उम्मीद है, अपनी नसर्गिक धरोहर को बेचने के इस विज्ञापन की आड़ में देश में कोलगेट 2.0 की उत्सवी शुरूआत न हो, बल्कि कोयले को राष्ट्रीय संपदा और धरोहर मानते हुए इसका किफ़ायती और जन हितैषी उपयोग सुनिश्चित हो। **-डाउन टू अर्थ**

इरफान का गांधी

❑ डॉ. मुहम्मद आरिफ़

दिसम्बर 2014 की एक सुबह एक अनजाने नम्बर की कॉल से नींद खुली। फोन करने वाले ने कहा कि इरफान बोल रहा हूँ। जब तक मैं समझता कि कौन साहब हैं, फिर आवाज़ आयी- इरफान खान, मुम्बई से, आपके शहर में एक फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में बनारस आया हूँ, मुलाकात तो लाजिमी है। अब मेरे होशोहवास दुरुस्त थे और मैंने तपाक से कहा कि अरे वाह, मजा आ गया सुबह सुबह। तय हुआ कि कल सुबह जल्दी मिलेंगे। तयशुदा वक्त पर मुलाकात हुई और बातों का सिलसिला हिंदुस्तानी तहज़ीब खास कर बनारस की मिली जुली संस्कृति से चलते-चलाते खानपान की चर्चा पर आ ठहरा। इरफान ने पूछा, क्या राजस्थानी स्वाद का कुछ मिल सकता है, जो सहज उपलब्ध हो? मैंने बनारस की कचौड़ी और जलेबा की तारीफ की तो उन्होंने एकाएक फरमाया कि जब इतनी तारीफ कर रहे हैं तो चलिए डॉक्टर साहब खा ही लिया जाए, देखते हैं आपकी बातों में कितना दम है। और बिना किसी झिझक के हम चल दिये। लहीम शहीम कद काठी के इरफान में गुरूर कतई नही था, लपक कर एक रिक्शा रोका और हम आ गए मारवाड़ी अस्पताल के सामने सड़क पर सजी हुई कचौड़ी और जलेबी की दुकान पर हींग की खुशबू का एहसास हुआ और इरफान के चेहरे पर मुस्कुराहट का आगाज़! एक दो तीन...और छः गरमागरम कचौड़ियां, फिर जलेबा का आनंद। सब्जी के स्वाद ने तो ऐसा रंग दिखाया कि बार बार दुकानदार की घूरती आंखों के बावजूद इरफान दोना आगे बढ़ाते रहे, उनकी आंखों में ऐसा जादू था कि वह निःशब्द दोने में सब्जी डालता रहा। तृप्ति का भाव उनके चेहरे से टपकने लगा और चाय की तलब लिए हम गोदौलिया ताँगा स्टैंड की ओर बढ़ गए। एकदम लापरवाही से घूमते-टहलते और बनारसी जीवन शैली पर चर्चा करते हमने चाय पी।

अजीब शख्स था वो, न कोई अकड़ न कोई बनावट और न कोई स्टारडम, मजेदार बात ये की हम यूँ ही खाते, पीते, घूमते रहे, किसी ने नोटिस तक नहीं लिया, जैसे कोई इंसानी किरदार अपनों के बीच आकर उनके वजूद का हिस्सा हो गया हो। ऐसे असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी थे इरफान। हमारी फेहरिस्त में वेधशाला और काशी हिंदू विश्वविद्यालय में कला भवन को देखना भी था, पर वक्त तेजी से भाग रहा था, इरफान ने कहा कि रोजी रोटी कमाने का समय हो गया, वापस चलते हैं। कला भवन और वेधशाला देखने की हसरत लिए हम वापस हो लिए।

दूसरी मुलाकात 2016 में मुम्बई में बरसात की एक शाम हुई, जो आखिरी मुलाकात बन कर रह गयी। मेरा मुम्बई अक्सर आना जाना रहता है। कई बार फिल्मी हस्तियों से रूबरू होता रहता हूँ। मैंने इरफान के घर पर दस्तक दी, कॉफ़ी के घूंट के साथ हमने दुनिया भर में हो रही तब्दीलियों को जांचा परखा और अंततः गांधी हमारी चर्चा के सेंटर पॉइंट बनते चले गए। वजह बनी प्रो. राम पुनियानी द्वारा लिखित और सेंटर फॉर हार्मोनी द्वारा प्रकाशित 'गांधी कथा' नामक पुस्तिका, जिसे हमनें इरफ़ान को भेंट किया। इरफान ने बताया कि उन्होंने गांधी की आत्मकथा के साथ साथ रोमारोलां और लुई फिशर को भी पढ़ा है। सहसा मुझे यकीन नही आया कि इतनी जद्दोजहद और मसरूफियत के बावजूद गांधी को जानने समझने की ख्वाहिश इरफान में बाकी थी। आइंस्टीन का वह वाक्य की कि आने वाली पीढियां मुश्किल से ये विश्वास करेंगी कि इस धरती पर गांधी नामक हाड़ मांस का कोई पुतला था, इरफान को याद था।

इरफान ने बरजस्ता कहा कि डॉक्टर साहब, हमने गांधी को भुला दिया। हमारे पालिसी मेकर्स ने गांधी दर्शन को न तो महत्व दिया और न ही आने वाली पीढ़ियों को गांधी से रूबरू कराया। काश हम गांधी के रास्ते पर चले होते तो आज आपको दंगों पर फैक्ट फाइंडिंग न करनी होती, न किसी की हक़तल्फी होती और न अमीर-गरीब के बीच की खाई इतनी चौड़ी होती।

फिर एक सवाल दागा कि ये बताइये कि गांधी को गांव की बड़ी फिक्र रहा करती थी, आज गांव में गांधी का कितना वजूद बाकी है। इस सवाल पर मैं असहज हो गया और बात को दूसरी तरफ मोड़ने की कोशिश करने लगा। क्या कह देता कि आज गांव गांधी से खाली हो गए हैं? विकास की नई इबारत गढ़ ली गयी है और गांव उसकी नई प्रयोगशाला बन गए हैं? साझी तहज़ीब, जिसके लिए हिंदुस्तान जाना जाता था, उस पर सवालिया निशान लग रहे हैं? मेरी आवाज को जैसे लकवा मार गया था।

भारत में गांधी को लेकर बदलती मानसिकता से भी इरफान चिंतित दिखे। उनका सोचना था कि गांधी आलोचना से परे हैं। उनसे आपके वैचारिक मतभेद उनकी कार्यशैली को लेकर तो हो सकते हैं, पर इससे गांधी के महत्व को कमतर आंकना ठीक नही है। हमें उनका अनुकरण करना चाहिए और शायद आज हिंसक होते समाज में यही एक विकल्प भी है। गांधी की किसी से तुलना की जरूरत नहीं है, वे तो देश की धरोहर के साथ साथ हमारी आलमी पहचान भी हैं। आज जहां दुनिया के तमाम मुल्क गांधी की राह पर चलने की कोशिश कर रहे हैं, हमने दूसरा रास्ता पकड़ लिया है। हमें लौटना होगा फिर उसी रास्ते पर, जिस पर चलना साबरमती का सन्त हमें सिखा गया है। इसी में हम सब की भलाई है और यही सच्चा और नेक रास्ता है। मैं खामोशी से सुनता रहा और अपने मन में इरफान की नई पुरानी कई तस्वीरें बनाता मिटाता रहा।

अंत में हमने इरफान से जल्द मिलने के वादे के साथ विदा ली। मुझे क्या पता था कि ये अंतिम विदाई साबित होगी। मेरे दोस्त, तुम्हारा वजूद हमारे दिलोदिमाग और हिंदुस्तानी रवायत में हमेशा कायम रहेगा। तुम्हारा नाम तारीख में सुनहरे हर्फ़ों में दर्ज रहेगा।

रहने को सदा दहर में आता नहीं कोई,
तुम जैसे गए वैसे तो जाता नहीं कोई।

अलविदा मेरे दोस्त, तुम बहुत याद आओगे गांधी के इस देश को। ❑

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविताएं

मैं कल फिर आऊंगा

मैं फिर जनम लूँगा,
फिर मैं
इसी जगह आऊँगा।
उचटती निगाहों की भीड़ में
अभावों के बीच,
लोगों की क्षत-विक्षत पीठ सहलाऊँगा।
लँगड़ाकर चलते हुए पावों को
कंधा दूँगा,
गिरी हुई पद-मर्दित पराजित विवशता को
बाँहों में उठाऊँगा।
इस समूह में
इन अनगिनत अनचीन्ही आवाजों में
कैसा दर्द है,
कोई नहीं सुनता!
पर इन आवाजों को
और इन कराहों को
दुनिया सुने, मैं ये चाहूँगा।
मेरी तो आदत है,
रोशनी जहाँ भी हो,
उसे खोज लाऊँगा
कातरता, चुप्पी या चीखें,
या हारे हुओं की खीजें,
जहाँ भी मिलेंगी,
उन्हें प्यार के सितार पर बजाऊँगा।
जीवन ने कई बार उकसाकर
मुझे अनुल्लंघ्य सागरों में फेंका है,
अगन-भट्ठियों में झोंका है,
मैंने वहाँ भी
ज्योति की मशाल प्राप्त करने के यत्न किए,
बचने के नहीं,
तो क्या इन टटकी बंदूकों से डर जाऊँगा?
तुम मुझको दोषी ठहराओ,
मैंने तुम्हारे सुनसान का गला घोंटा है,
पर मैं गाऊँगा।
चाहे इस प्रार्थना सभा में
तुम सब मुझ पर गोलियाँ चलाओ,
मैं मर जाऊँगा,
लेकिन मैं कल फिर जनम लूँगा,
मैं कल फिर आऊँगा।

-दुष्यंत कुमार

आह गांधी

तिरे मातम में शामिल हैं ज़मीन ओ आसमाँ वाले,
अहिंसा के पुजारी सोग में हैं दो जहाँ वाले।
तिरा अरमान पूरा होगा ऐ अम्न-ओ-अमाँ वाले!
तिरे झंडे के नीचे आएँगे सारे जहाँ वाले।
मिरे बूढ़े बहादुर इस बुढ़ापे में जवाँ-मर्दी,
निशाँ गोली के सीने पर हैं गोली के निशाँ वाले।
निशाँ हैं गोलियों के या खिले हैं फूल सीने पर,
उसी को मार डाला जिस ने सर ऊँचा किया सब का,
न क्यूँ ग़ैरत से सर नीचा करें हिन्दोस्ताँ वाले।
मिरे गाँधी ज़मीं वालों ने तेरी क़द्र जब कम की,
उठा कर ले गए तुझ को ज़मीं से आसमाँ वाले।
ज़मीं पर जिनका मातम है, फ़लक पर धूम है उनकी।
ज़रा सी देर में देखो कहाँ पहुँचे कहाँ वाले।
पहुँचता धूम से मंजिल पे अपना कारवाँ अब तक,
अगर दुश्मन न होते कारवाँ के कारवाँ वाले।
सुनेगा ऐ 'नज़ीर' अब कौन मज़लूमों की फ़रियादें,
फुग़ाँ ले कर कहाँ जाएँगे अब आह-ओ-फ़ुग़ाँ वाले!

-नज़ीर बनारसी

इंसान में धड़कता हुआ एक दिल

आग़ोश में फूलों की थिरकता हुआ शोला,
अँगारों के गहवारे में सोई हुई शबनम।
इक जज़्बा, इक एहसास, इक अंदाज़,
इक आवाज़,
निखरा हुआ इक दर्द तपाया हुआ इक ग़म।
इंसान की सूरत में धड़कता हुआ इक दिल,
पैकर में अनासिर के कोई दीदा-ए-पुरनम।
सीने में समोए हुए गंगा का तमव्वुज,
काँधे पे हिमाला का उठाए हुए परचम।
नैरंगी-ए-अफ्कार का सिमटा हुआ दरिया,
बेताबी-ए-जज़बात का ठहरा हुआ तूफ़ाँ।
फ़ारूक़ का मतवाला उख़ुव्वत का पुजारी,
'गौतम' का दिलाराम अहिंसा की रग-ए-जाँ।
अपनी ही ख़ताओं का वो नक्क़ाद जवाँ फिक्र,
वो अपने ही असरार का इक सैल-ए-खिरामाँ।
माहौल के सीने का दहकता हुआ लावा,
तारीख़ के माथे पे सजाई हुई अफ्शाँ।

-हुरमतुल इकराम

बाबा गांधी

स्वराज का झंडा भारत में
गड़वा दिया गांधी बाबा ने।
दिल क़ौम-ओ-वतन के दुश्मन का
दहला दिया गांधी बाबा ने।
उल्फ़त की राह में मर जाना
पर नाम जहाँ में कर जाना,
ये पाठ वतन के बच्चों को
सिखला दिया गांधी बाबा ने।
इक धर्म की ताक़त दिखला कर,
ज़ालिम के छक्के छुड़वा कर,
भारत का लोहा दुनिया से
मनवा दिया गांधी बाबा ने।
ऐ क़ौम ए वतन के परवानों!
लो अपने फ़र्ज को पहचानो,
अब जेल से ये पैग़ाम हमें
भिजवा दिया गांधी बाबा ने।
चर्खे की तोप चला दो तुम,
ग़ैरों के छक्के छुड़ा दो तुम,
ये हिन्द का चक्र-सुदर्शन है,
समझा दिया गांधी बाबा ने।
नफ़रत थी ग़रीबों से जिन को,
हैं शाद अछूतों से मिल कर।
इक प्रेम-पियाला दुनिया को
पिलवा दिया गांधी बाबा ने।
गिर्दाब में क़ौम की कश्ती थी,
तूफ़ां बरपा थे आफ़त के,
नेशन का बेड़ा साहिल पर
लगवा दिया गांधी बाबा ने।
भगवान भगत ने हिम्मत की,
इक प्रेम की ज्वाला जाग उठी,
करवा कर शीर-ओ-शकर सबको
दिखला दिया गांधी बाबा ने।
हँस हँस कर क़ौम के बच्चों ने,
सीनों पर गोलियाँ खाई हैं,
भारत की राह में मर मिटना
सिखला दिया गांधी बाबा ने।
ग़ैरों के झांसों में आना,
दुश्वार है हिन्द के लालों को,
आँखों से ग़फ़लत का पर्दा
उठवा दिया गांधी बाबा ने।

-आफ़ताब रईस पानीपती

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार